

Visit

**Dwarkadheeshvastu.com**

For

**FREE**

Vastu Consultancy, Music, Epics, Devotional Videos  
Educational Books, Educational Videos, Wallpapers

\*\*\*\*

All Music is also available in CD format. CD Cover can also be print with your Firm Name

\*\*\*\*

We also provide this whole Music and Data in PENDRIVE and EXTERNAL HARD DISK.

Contact : Ankit Mishra ( +91-8010381364, dwarkadheeshvastu@gmail.com )

# **NARAD BHAKTI SUTRA (Hindi)**

## विषय-सूची

प्रेम की पराकाष्ठा	1
प्रेम की अभिव्यक्ति	17
प्रेम अपथ की सीढ़ी	33
संगत का प्रभाव	47
प्रेम कहाँ और किसमें	57
प्रेम, मूरत और तीरथ	73
ऋषियों की दृष्टि - प्रेम के रंग और ढंग	97

# प्रेम की पराकाणा

प्रेम की पराकाणा  
प्रेम की पराकाणा

## प्रेम की पराकाष्ठा

जीवन की हर इच्छा के पीछे एक ही माँग है। आप यदि परख कर देखो कि वह एक माँग क्या है, तो निश्चित रूप से मालूम पड़ता है कि वह है ढाई अक्षर प्रेम का। सब-कुछ हो जीवन में, पर प्रेम न हो, तब जीवन जीवन नहीं रह जाता। प्रेम हो, और कुछ हो या न हो, फिर भी तृप्ति रहती है जीवन में, मस्ती रहती है, आनन्द रहता है, है कि नहीं?

जीवन की माँग है 'प्रेम' - और जीवन में परेशानियाँ, समस्यायें, बन्धन, दुःख, दर्द, यह सब होता भी प्रेम से ही है। व्यक्ति से प्रेम हो जाए, वही फिर मोह का कारण बन जाता है। वस्तु से प्रेम हो जाए तो लोभ हो जाता है, उसी को लोभ कहते हैं। अपनी स्थिति से प्रेम हो जाए, उसको मद कहते हैं, अहंकार कहते हैं। और ममता, अपनेपन से प्रेम यदि मात्रा से अधिक हो जाए, तो उसे ईर्ष्या कहते हैं। प्रेम अभीष्ट है, फिर भी उसके साथ जुड़ा हुआ यह सब अनिष्ट - किसी को पसन्द नहीं है। हम इससे बचना चाहते हैं क्योंकि अनिष्टों से ही दुःख होता है।

फिर जीवन की तलाश क्या है ? हमें एक ऐसा प्रेम मिले जिससे कोई विकार, जिससे कोई दुःख, कोई बन्धन महसूस नहीं हो। जीवन भर प्रेम की खोज चलती है। बचपन में इसे खिलौनों में खोजते हैं, खेल में खोजते हैं, फिर उसी प्रेम को दोस्तों में खोजते हैं, साथी-संगियों

में खोजते हैं। फिर आगे चलकर, वृद्धावस्था में, बच्चों में खोजते हैं। तब भी हाथ कुछ नहीं आता, खाली ही रह जाता है।

यदि सचमुच में प्रेम का अनुभव, शुद्ध प्रेम का अनुभव एक बार भी हो जाए, तो व्यक्ति का जीवन परिवर्तन की दिशा पर चल पड़ता है। एक बार भी एक झलक मिल जाए भक्ति की, फिर व्यक्ति के जीवन में समष्टि उतर आती है, तृप्ति झलकती है, कदम-कदम पर आनन्द की लहर उठती है।

यदि हम प्रेम को जानते ही नहीं होते, तब प्रेम के बारे में चर्चा करना, विचार करना, कुछ कहना, सब बेकार है। यदि कोई व्यक्ति अन्धा है, तो उसको रोशनी के बारे में बताना मुश्किल है; या कोई बहरा है, उसको संगीत के बारे में समझाना करीब-करीब असम्भव है। इसी तरह यदि हम प्रेम को जानते ही नहीं होते, तब उसके बारे में कहना, बताना, चर्चा करना, विचार करना, सब बेकार है।

हम प्रेम को जानते हैं, या ऐसा कहें, प्रेम को हम महसूस करते हैं जीवन में, मगर उसकी गहराई में नहीं उतरे। हमारे जीवन में प्रेम एक कूएँ जैसा बनकर रह गया है। एक छोटा कंकड़, पत्थर भी यदि उसमें डालो तो एकदम नीचे की मिट्टी ऊपर आने लगती है। परन्तु मन यदि सागर जैसा हो, प्रेम यदि इतना विशाल हो, तब चाहे पहाड़ भी गिर जाए उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। जीवन में प्रेम उदय हो और उसकी विशालता हमारे अनुभव में आ जाए, तब समझना जीवन सफल हो गया। ज़रा सोचो न, मान लो आपको सब-कुछ मिल जाए जीवन में, मगर प्रेम नहीं, आप जीना पसन्द करेंगे क्या ? प्रेम अनुभव में पूर्ण रूप से आ जाए, तब उसके बारे में व्याख्या करने की कोई

ज़रूरत नहीं। गहराई में यदि एक बार भी तुम भक्ति की श्वास ले लोगे, फिर “भक्ति क्या है” बताने की ज़रूरत नहीं ! किंतु एक धुँधला सा अनुभव तो है, थोड़ा पता तो है, मगर पूरा समझ में नहीं आ रहा। तब नारद महर्षि कहते हैं -

### अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः॥

अब हम भक्ति की चर्चा करते हैं। कब ? जब हम जानते हैं प्रेम क्या है। जब हम जीवन में, किसी न किसी अंश पर, प्रेम और भक्ति को, शान्ति और तृप्ति को, अनुभव कर चुके हैं। खुद के जीवन में मुड़कर देख चुके हैं, अनुभव कर चुके हैं कि हर परिस्थिति, वस्तु, व्यक्ति परिवर्तनशील है। दुनिया में सब-कुछ बदल रहा है मगर कुछ ऐसा है जो बदलता नहीं है। वह क्या है यह नहीं पता है।

हम अपने बारे में भी देख चुके हैं, अपना सब-कुछ बदल रहा है। विचार बदलते हैं, शरीर तो बदल चुका, वातावरण में बहुत परिवर्तन आया है। दिन-दिन नये वातावरण से, परिस्थितियों से गुज़रते हुए हम निकल रहे हैं। फिर वह क्या है जो अपरिवर्तनशील है, जो बदला नहीं है, इस खोज की एक आकांक्षा मन में उठे। भई, जब सुनने की चाह हो तब बोलने से फायदा होता है, प्यास हो तब पानी पीने में मज़ा आता है, तब वह अच्छा लगता है।

ऐसी प्यास हमारे भीतर जग जाए, तब नारद कहते हैं, “अच्छा अब मैं बताता हूँ भक्ति क्या है। अब मैं उसकी व्याख्या करता हूँ। अब तुम ऐसे प्रेम की तलाश में हो जिसका रूप क्या है, लक्षण क्या है, यह मैं तुम्हें बताता हूँ”।

नारद माने वह ऋषि जो तुम्हें अपने केन्द्र से जोड़ देते हैं, अपने आप से जोड़ देते हैं। नारद महर्षि का नाम तो विख्यात है, सब ने सुना है। जहाँ जाएँ वहाँ कलह कर देते हैं नारद मुनि। कलह भी वही व्यक्ति कर सकता है जो प्रेमी हो, जिसके भीतर एक मस्ती है। जो व्यक्ति परेशान है वह कलह नहीं पैदा कर सकता, वह झगड़ा करता है। झगड़ा और कलह में भेद है। जिनकी दृष्टि में समस्त जीवन एक खेल हो गया है वह व्यक्ति तुम्हें भक्ति के बारे में बताते हैं - भक्ति क्या है - अथातो भक्ति व्याख्यास्यामः।

असल में भक्ति व्याख्या की चीज़ नहीं है। व्याख्या दिमाग की चीज़ होती है, भक्ति एक समझ दिल की होती है, प्रेम दिल का होता है, व्याख्या दिमाग की होती है। व्यक्ति का जीवन पूर्ण तभी होता है जब दिल और दिमाग का सम्मिलन हो। इसीलिए कहते हैं कि सिर्फ भाव में बह जाओगे तब भी जीवन पूर्ण नहीं होगा। और दिमाग के सिद्धान्तों में, विचारों में उलझे रहोगे तब भी जीवन पूर्ण नहीं होगा। दिमाग से दिल को समझो, दिल से दिमाग को परखो।

अथातो भक्ति व्याख्यास्यामः। अब हम भक्ति के बारे में व्याख्या करते हैं। जिसकी व्याख्या करना करीब-करीब असम्भव है - वह सिर्फ नारद के लिए सम्भव है। बहुत से ऋषि हुए हैं इस देश में, उनमें से एक नारद और एक शाण्डिल्य के सिवाय किसी और ने भक्ति के बारे में व्याख्या नहीं की है। उसमें नारद ही भक्ति के प्रतीक हैं क्योंकि वे जानते हैं केन्द्र को भी और वे जानते हैं वृत्त को भी।

तब बताते हैं -

## सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ॥

अब हम किसी से पूछें, “ऋषिकेश कहाँ है” ? तो कोई हरिद्वार जानने वाला होगा वह कहेगा, “देखो हरिद्वार जानते हो ना, ऋषिकेश हरिद्वार से पचीस कीलोमीटर की दूरी पर है; उत्तरभारत में, यू. पी. में है।” कुछ समझाने के लिए भी एक निदेशन की जरूरत है, जिसे अंग्रेजी में रेफरेन्स पॉइन्ट कहते हैं। जैसे दिल्ली कहाँ है ? हरियाणा और यू. पी. के बीच में है। सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा, वह भक्ति क्या है ? परमप्रेम, अतिप्रेम, प्रेम की पराकाष्ठा है। जब प्रेम क्या है नहीं जानते हैं, तब भक्ति कैसे समझ सकते हैं ? तो कहते हैं प्रेम तो तुम जानते हो। माता का प्रेम तुमने जाना, पिता का प्रेम जाना, भाई का, बहन का प्रेम तुमने जाना, पति-पत्नी का प्रेम तुमने जाना। बच्चों के प्रति प्यार तुम्हारे अनुभव में आ गया। वस्तु के प्रति लगाव, व्यक्ति के प्रति लगाव, परिस्थिति के प्रति लगाव, जिससे मोहित होकर हम दुःखी हो जाते हैं - उस प्रेम को जानने पर, कहते हैं, इस प्रेम की ही पराकाष्ठा है भक्ति।

एक प्रेम को वात्सल्य, दूसरे को स्नेह, तीसरे को प्रेम कहते हैं - प्रीति, गौरव। इस तरह से अलग-अलग नाम से हम प्रेम को जानते हैं। और इन सब तरह के प्रेम से परे जो एक प्रेम है, उसी को भक्ति कहते हैं। और इन सब प्रेम को अपने में समेटकर पूर्ण रूप से जो निकली है जीवनी ऊर्जा, जीवनी शक्ति, वही प्रेम है। सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ।

अक्सर क्या होता है, प्रेम तो होता है हमें, किंतु वह प्रेम बहुत शीघ्र ही विकृत हो जाता है। उसकी मौत हो जाती है। प्रेम जहाँ ईर्ष्या

बनी तो प्रेम की मौत हो गई वहाँ पर। इर्ष्या में बदल गया वह प्रेम। जहाँ प्रेम लोभ हुआ तो वहाँ प्रेम खत्म हो गया, वह प्रेम ही द्वेष बन गया। प्रेम हमारे जीवन में हमेशा मरणशील रहा है, इसीलिए ही समस्या है।

आप किसी से भी पूछो - “आप अपने लिए जी रहे हो क्या”? वे कहेंगे “नहीं”। कहेंगे, “नहीं, नहीं। हम अपने माता-पिता के लिए जी रहे हैं, पति-पत्नी के लिए जी रहे हैं”। पत्नी से पूछो “तुम किसके लिए जी रही हो”? वह कहेगी “अरे मुझे क्या चाहिए? मैं तो अपने पति, अपने बच्चों के लिए जी रही हूँ”। बच्चों से पूछो, “हम माँ-बाप के लिए जी रहे हैं”। माँ-बाप से पूछो, “हम बच्चों के लिए जी रहे हैं”। सब एक दूसरे के लिए जी रहे हैं। फिर भी कोई नहीं जी रहा है। इतना कोलाहल, इतनी परेशानी, इतनी बेचैनी जीवन में क्यों? प्रेम की मौत हो गई। मगर परमप्रेम का स्वरूप क्या है, तब कहते हैं नारद -

अमृतस्वरूपा च॥

भक्ति ऐसा प्रेम है जिसकी कभी मृत्यु नहीं, जो कभी मरता नहीं है, दिन-प्रतिदिन उसकी वृद्धि होती है। सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च। जो कभी मरती नहीं, उस भक्ति को जानने से क्या होगा?

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति,  
अमृतो भवति, तृप्तो भवति॥

भक्ति पाकर क्या करोगे तुम जीवन में? इससे क्या होता है? तब कहते हैं सिद्धो भवति। कोई कमी नहीं रह जाएगी तुम्हारे जीवन

में। भक्तों के जीवन में कोई कमी नहीं होती। किसी भी चीज़ की कमी नहीं होती, किसी भी गुण की कमी नहीं होती। सिद्धो भवति, अमृतो भवति - जो अमृतत्व को जान लिया, उसके जीवन में अमृतत्व फलप गया। जब हम क्रोधित होते हैं, तब हम एकदम क्रोध में हो जाते हैं और जब खुश होते हैं तब वह खुशी हमारे में छा जाती है। हम कहते हैं न ‘खुशी से भर गये’। इसी तरह अमृतत्व को जानते ही, भक्ति को जानते ही लगता है ‘मैं तो शरीर नहीं हूँ, मैं तो कुछ और ही हूँ। मैं वही हूँ। मेरी कभी मृत्यु हुई ही नहीं, और न ही होगी’। जब मन सिमटकर अपने आप में ढूब गया तब जो रहा वह गगन जैसी विशाल हमारी सत्ता। कभी गगन की मृत्यु देखी है, सुनी है ? मृत्यु शब्द ही मिट्टी के साथ जुड़ा हुआ है। मिट्टी परिवर्तनशील है, आकाश नहीं। मन पानी के साथ जुड़ा हुआ है, जैसे पानी बहता है वैसे ही मन भी बहता है। आज के विज्ञान से यह बात सिद्ध हुई है कि शरीर में ९८% आकाश तत्त्व है, जो बचा हुआ दो प्रतिशत है उसमें साठ प्रतिशत पानी है, जल तत्त्व है। मृण्मय शरीर मौत के अधीन है मगर चेतना अमर है।

प्रेम चमड़ा है या चेतना ? क्या है प्रेम ? यदि प्रेम सिर्फ मिट्टी होता तो वह अमृतत्व में नहीं ले जा सकता, भक्ति तक नहीं पहुँचा सकता। परम प्रेम जो है वह अमृतस्वरूप है, वही तुम्हारा स्वरूप है। सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति - तृप्त हो जाओ।

यत्प्राप्य न किञ्चिद वाञ्छति, न शोचति,  
न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति ॥

नारद अगले सूत्र में कहते हैं - अच्छा, इसको प्राप्त करने के बाद

क्या-क्या नहीं करते..... दोनों तरफ देखना पड़ता है न लक्षण। एक तो आपने क्या पाया और आपने क्या खोया। पाया तो यह कि हमारे भीतर जो तत्त्व है वह न भीतर है, न बाहर है, सब जगह है या दोनों जगह है, और वह अमृतत्त्व है। और जिसके पाने से जीवन में कोई कमी नहीं रह जाती, यह भक्ति है और तृप्ति है। तृप्ति झलकती है जीवन में, तो यह भक्ति पाने का लक्षण हुआ।

भक्ति पाने से क्या-क्या नहीं करते - वो यत्कलब्ध्वा पुमान् - मुझे यह चाहिए, वह चाहिए..... और चाह जिससे मिट जाती है - देखो, जीवन में सौभाग्यशाली उन्हीं को कहते हैं जिनके मन में चाह उठने से पहले ही पूरी हो जाये। भाग्यशाली हम उसी को कह सकते हैं जिनके भीतर चाह की कोई आवश्यकता ही न पड़े। माने भूख लगे भी नहीं, तब तक खाना सामने मौजूद हो; प्यास लगे ही नहीं मगर पानी हो, अमृत हो सामने पीने के लिए। माने चाह उठने की सम्भावना ही नहीं रहे - तो कह सकते हैं भाग्यशाली हैं। और दूसरे नम्बर का भाग्यशाली, उससे ज़रा कम, चाह उठे, उठते ही पूर्ण हो जाए; माने प्यास लग रही हो आपको, तुरन्त कोई पानी लेकर आए। माने चाह उठी और उसके पूर्ण होने में कोई देर न लगे। वे दूसरे नम्बर के भाग्यशाली हैं। तीसरे नम्बर के भाग्यशाली वे होते हैं जिनके भीतर चाह तो उठती है मगर पूरा होने में बहुत समय और परिश्रम लग जाता है। बरसों उसमें लगे रहते हैं, बहुत परिश्रम करते हैं, फिर जब वह चाह पूरी भी होती है तब भी कुछ अच्छा नहीं लगता। उसका आनन्द भी नहीं ले पाते, उसकी खुशी भी नहीं अनुभव कर पाते। ये उससे भी कम भाग्यशाली हैं। दुर्भाग्यशाली उनको कहते हैं जिनके भीतर चाह ही चाह उठती है परन्तु वह पूरी नहीं होती।

भक्ति को पाने से जीवन में कुछ इच्छा नहीं रह जाती। क्यों ? जो आवश्यक वस्तुएँ हैं, अपने आप, ज़रूरत से अधिक, समय से पूर्व प्राप्त होने लग जाती हैं।

न किञ्चिद वाञ्छति न शोचति । जब चाह ही नहीं, फिर दुःखी होने की बात ही नहीं रही। वे बैठकर दुःखी नहीं होते। दुःख माने क्या? भूतकाल को पकड़ना। भूत पकड़ लिया है न। सचमुच में यह बात सच है, भूत सवार हो गया। बीती हुई बातों को दिमाग में ले-लेकर हम दुःखी हो जाते हैं। चित्त की दशा यदि देखोगे न, हर क्षण में, हर क्षण में हम बीती हुई बातों पर अफ़सोस करते रहते हैं और भविष्य में होने वाली बातों को लेकर भयभीत होते रहते हैं। एक कल्पना से हम भयभीत होते हैं और स्मृति से हम दुःखी होते हैं। कल्पना और स्मृति के बीच में कहीं हम रहते हैं। भक्ति उस वर्तमान क्षण की बात है। कहते हैं, न किञ्चिद वाञ्छति भविष्यकाल के बारे में ये चाहिए, वो चाहिए ... ये नहीं। न शोचति । भूतकाल को लेकर अफ़सोस नहीं करते। हम हर बात पर अफ़सोस करने लगते हैं, नाराज होते रहते हैं पुरानी बातों को लेकर, वर्तमान क्षण को भी खराब करते हैं, भविष्यकाल का तो कहना ही क्या। न किञ्चिद वाञ्छति न शोचति, न द्वेष्टि - जब हम लगातार चाह करते रहते हैं और अफ़सोस करते हैं तो इसका तीसरा भाई है द्वेष - वह इनके पीछे-पीछे आ जाता है, तीसरा भागीदार। हम खुद के मन की वृत्तियों को देखकर खुद से नफ़रत करने लगते हैं या दूसरों से नफ़रत करने लगते हैं; द्वेष। मगर भक्ति के पाने से क्या होता है ? न द्वेष्टि - द्वेष मिट जाता है जीवन में, तुम कर ही नहीं सकोगे द्वेष। मन में एक हल्का सा द्वेष का धुँआ भी उठे तो एकदम असह्य हो

जाता है, क्षण भर भी उसको सहन नहीं कर पायेंगे। जब क्षण भर किसी चीज को सहन नहीं कर पाते हैं तब हम उसका त्याग कर देते हैं। यह हो जाता है, अपने आप। न खुद से नफरत, न किसी और से नफरत। वह नफरत का बीज ही नष्ट हो जाता है। न किञ्चिद वाञ्छति, न शोचति, न द्वेष्टि, न रमते, नोत्साही भवति। जिसको पाकर कभी चाह में, या अफ़सोस में, या द्वेष में मग्न हो जाना, माने रम जाना। यहाँ बताया, रमते माने जिसमें रमण कर ले। यह और सूक्ष्म है। प्रेम में भी रमण अधिक करने लगते हैं, तब भी हम होश खो देते हैं, प्रेम को खो देते हैं। देखो, अकसर जो लोग खुश रहते हैं न, वही लोग दूसरों को परेशानी में डाल देते हैं। वे खुशी में होश खो देते हैं और बेहोश आदमी से गलती ही होगी। वह कुछ भी करेगा उसमें कोई भूल होगी ही। यह अकसर होता है। पार्टियों में जो लोग बहुत खुश रहते हैं उनको इतनी समझ नहीं कि वे क्या बोल रहे हैं, क्या कर रहे हैं; कुछ बोल पड़ते हैं, कर बैठते हैं जिससे दूसरों के दिल में चोट लग जाती है। इसलिए रमण भी नहीं करते। और उत्साहित भी नहीं होते। यह शब्द ज़रा चौंकाने वाला है। क्या ? भक्ति माने जिसमें उत्साह नहीं है, वह भक्ति है ? भक्त उत्साहित नहीं होगा ? उत्साह तो जीवन का लक्षण है, निरुत्साह नहीं है। इसको हमलोगों ने गलत समझा है। खास तौर से इस देश में जब किसी भी धर्म की बात होती है, या ध्यान, सत्संग, भजन, कीर्तन होता है, लोग बहुत गम्भीर बैठे रहते हैं, क्यों ? उत्साहित नहीं होना चाहिए, खुशी व्यक्त नहीं करते। गम्भीरता, निरुत्साह - यही है क्या भक्ति का लक्षण? नहीं। यहाँ जो बताया है न, न उत्साही भवति माने एक उत्साह या उत्सुकता में ज्वरित। उत्साह में क्या है,

अकसर एक ज्वर है, फलाकांक्षा है। दो तरह का उत्साह है - एक उत्साह जिसमें हम फलाकांक्षी रहते हैं, माने - 'क्या होगा, क्या होगा, कैसे होगा, यह हो जाएगा कि नहीं' - इस तरह का ज्वर होता है भीतर। दूसरी तरह का उत्साह है जिसमें आनन्द या जीवन ऊर्जा को अभिव्यक्त करते हैं। यहाँ जो नोत्साही भवति बताया है नारद ऋषि ने, उस तरह के उत्साह को उन्होंने नकारा जिस उत्साह में ज्वर है, फलाकांक्षा है।

फिर अगले सूत्र में कहते हैं -

यत् ज्ञात्वा मत्तो भवति, स्तब्धो भवति,  
आत्मारामो भवति ॥

यत् ज्ञात्वा जिसको जानने से मत्तो भवति उन्मत अवस्था हो। स्तब्धो भवति - स्तब्धता छा जाएगी; स्तब्ध-ठहराव, जीवन में एक ठहराव आ जाता है, मन में एक ठहराव आता है, व्यक्तित्व में ठहराव आ जाए - यह भक्ति का लक्षण है। चंचलता मिट जाए, स्थिरता की प्राप्ति हो। मत्तो भवति - intoxicated जिसको कहते हैं न, नशे में, भक्ति का नशा ऐसा है जिसके बराबर और कोई नशा नहीं। प्रेम का नशा सबसे बुरा है। यह ऐसा नशा है जो तुम्हें सारी दुनिया को भुला देता है। यत् ज्ञात्वा। जिसको जानने से - यहाँ एक फ़र्क है। जिसको पाना और उसको जानना - दो अलग चीज़ है। पा लेना आसान है मगर जानना कठिन है, सो जाना आसान है मगर नींद के बारे में जानना बहुत कठिन है। प्रेम करना आसान है मगर प्रेम को समझना अति कठिन है। मगर एक बार समझ जाएँ, समझने का जो साधन है, उस साधन में ही ऐसे झूब जाएँ, जिससे तुम समझते हो, समझने लगे

हो, वही शान्त हो जाएगा। वही पिघल जाएगा। तभी मस्त हो सकते हो, उन्मत्त हो सकते हो। उन्मत्त माने क्या ? जहाँ बुद्धि पिघल गई। बुद्धि का पिघलना इतना आसान नहीं है। जब भी आदमी बुद्धि से परेशान होता है तभी पीकर उसको पिघलाने की कोशिश करता है। वह होता तो नहीं है, थोड़े समय के लिए हो जाओ उन्मत्त; नशे में, मगर वह एक स्थाई स्थिति तो नहीं है। मगर भक्ति में एक स्थाई स्थिति का उद्गम होता है। मत्तो भवति, मत्त; एक नशा। उस नशे के साथ-साथ ठहराव। अक्सर जो व्यक्ति नशे में होता है उसमें कोई ठहराव नहीं होता, अस्थिर रहता है। स्थिरता भी रहे और उन्मत्तता भी हो, यह एक विशेष अवस्था है। यह भक्ति से ही सम्भव है। और कोई चारा ही नहीं। मत्तो भवति स्तव्यो भवति, आत्मारामो भवति। फिर वह अपनी आत्मा में रमण करता है। आत्मा में रमण करना, आत्मारामो भवति। शब्द तो बहुत सुना है, आत्माराम, आत्मा में रमण करो, अपनी आत्मा में ठहर जाओ, आत्मा तुम हो, निश्चय करो - यह आत्मा है क्या ? कई लोग कहते हैं मेरी आत्मा ऐसे निकल कर बाहर आ गई, मैंने देख लिया। यह देखने वाला कौन होता है, आत्मा को देखने वाला? यह आत्मा की आत्मा है ? तुमने अपनी आत्मा को देख लिया, उड़ता हुआ ऊपर छत पर ? “मेरी आत्मा निकल गई ऐसे, ज्योति रूप में, मैं वहाँ देखता रहा ..... आत्मदर्शन ....” यह क्या है ? उसका कोई रंग है, लाल है, पीला है ? यह बहुत बड़ी भूल है। जिससे तुम जानते हो, वही आत्मा है। जिसमें जानने की शक्ति है, वही आत्मा है। आकाश कहीं और दूर नहीं है - हम समझते हैं आकाश वहाँ ऊपर है। आकाश ऊपर है तो यहाँ क्या है ? तुम कहाँ हो ? जहाँ तुम हो, वहीं आकाश है। तुम आकाश में ही

तो टिके हो। यह पृथ्वी भी आकाश में ही तो है। आकाश के बाहर कुछ है क्या ? शरीर के भीतर आत्मा नहीं है, आत्मा के भीतर शरीर है। हमारा स्थूल शरीर जितना है, उससे दस गुणा अधिक सूक्ष्म शरीर है और उससे भी हजार गुणा अधिक है कारण शरीर। कहते हैं न पाँच कोष हैं - एक शरीर, फिर प्राणमय कोष, फिर मनोमय कोष। तुम अपने अनुभव से देखो न - शरीर और प्राणमय, शरीर की जो प्राण शक्ति है, ऊर्जा है, यह शरीर, सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर से भी बड़ा है। मनोमय कोष - विचार का जो हमारा शरीर है, वह इससे भी बड़ा; भावनात्मक शरीर उससे भी बड़ा है। और आनन्दमय कोष जिसको हम कहते हैं, वह अनन्त है, व्याप्त है, सब जगह व्याप्त। हम जब भी खुश रहते हैं, आनन्द में रहते हैं, उस वक्त शरीर का कोई भान नहीं रहता।

मत्तो भवति उस उन्मत्त अवस्था को; स्तब्धो भवति ठहराव; आत्मारामो भवति - जिसमें हम अपनी ही आत्मा में रमण करते हैं। कोई पराया लगे ही नहीं, तब वह आत्माराम अवस्था है। जैसे यह हाथ इस शरीर से ही जुड़ा हुआ है। इस शरीर का ही अंग है। जैसे शरीर के ऊपर कपड़े। इसी तरह सब एक हैं। जितना सूक्ष्म में जाते जाओगे, तुम पाओगे कि यह सब एक ही है। स्थूल में पृथक्-पृथक् मालूम पड़ता है, सूक्ष्म में जाते-जाते लगता है एक ही है। जैसे जो हवा इस शरीर में गई, वही हवा दूसरों के शरीर के भीतर भी गई। हवा को तो हम बैट नहीं सकते न। यह मेरा है, यह तेरा - यह नहीं कह सकते। तो सूक्ष्म में जाते-जाते हम पाते हैं कि एक ही है। आत्मारामो भवति। यदि ऐसी बात हो, तो फिर क्या करें ? फिर मुझे वही चाहिए। मुझे मस्त होना है, मुझे आनन्दित अनुभव करना है। अभी ही होना है मुझे - यह इच्छा

उठे, यह कामना उठे भीतर। तब नारद कहते हैं -

### सा न कामयमाना, निरोधरूपत्वात् ॥

यह इच्छा करने वाली बात नहीं है। बैठकर यह न करो - मुझे भक्ति दो, मुझे भक्ति दो .... भक्ति की माँग ऐसी है जैसे मुझे साँस दो, मुझे साँस दो। जिस साँस से तुम बोल रहे हो 'साँस दो', वही तो है। साँस लेकर ही तो तुम कह रहे हो कि मुझे साँस दो। सा न कामयमाना - कामना की परिधि से परे है प्रेम। प्रेम की चाह भत करो। निरोध रूपत्वात् चाहत के निरोध होते ही प्रेम का उदय होता है। मुझे कुछ नहीं चाहिए या मेरे पास सब कुछ है। इन दोनों अवस्था में हम निरोधित हो जाते हैं। मन निरोध में आ जाता है। निरोध माने क्या ? "मैं कुछ नहीं हूँ, मुझे कुछ नहीं चाहिए," या "मैं सब कुछ हूँ, मेरे पास सब कुछ है"। सा न कामयमाना - कामना उसी वस्तु की होती है जो अपनी नहीं है। अपना हो जाने पर कामना नहीं होती। बाज़ार में जाते हो कोई अच्छा चित्र देखते हो, - तो कहते हो, "यह मुझे चाहिए - मगर घर में जो इतने चित्र लगे हुए हैं दीवालों पर, उनपर नज़र नहीं जाती। जो अपना है नहीं, उसको चाहते हैं। प्रेम तो आपका स्वभाव है, आपका गुण है, आपकी साँस है, आपका जीवन है, आप हो ! उसको चाहने से नहीं मिलेगा। चाहने से उससे दूर जाओगे तुम, इसलिए निरोध रूपत्वात् । सा न कामयमाना निरोध रूपत्वात् तालाब में लहर है, लहर शान्त होते ही तालाब की शुचिता का एहसास होता है। इसी तरह मन की जो इच्छाएँ हैं, ये शान्त होते ही प्रेम का उदय हो जाता है।

अब निरोध कैसे हो ? मन को शान्त करें कैसे ? तब अगला सूत्र। देखिए इन सूत्रों में यह महत्व है कि एक-एक कदम पर एक-एक

सूत्र पूर्ण रूप है, अपने आप में पूर्ण है, वहीं पर तुम समाप्त कर सकते हो, आगे जाने की कोई ज़रूरत नहीं। यदि तब भी समझ में न आये तो आगे के सूत्र में उसको और समझा देते हैं।

### निरोधस्तु लोक वेदव्यापारन्यासः ॥

निरोध - किसको रोकें ? क्या रोकना चाहिए जीवन में ? तब कहते हैं, लोक वेद व्यापार न्यासः । बहुत काम में चौबीस घंटे हम फँसे रहें, तब मन में कभी प्रेम का अनुभव, एहसास हो ही नहीं सकता। यह एक तरकीब है। आदमी को प्रेम से बचना हो तो अपने आप को इतना व्यस्त कर दो - कहते हैं न, साँस लेने की भी फुरसत नहीं - फिर मरे हुए के जैसे रहते हैं। सुबह उठने से लेकर रात तक काम में लगे रहो, लगे रहो, लगे रहो - जीवन उसी में समाप्त हो जाता है। पैसे बनाने की मशीन बन जाओ। सुबह से रात तक पैसे के बारे में सोचते रहो, या कुछ और ऐसे सोचते रहो, काम करते रहो, शान्त कभी नहीं होना, तब जीवन में प्रेम या उससे सम्बन्धित कोई भी चीज़ की कोई झलक तक नहीं आएगी। या हम काम से तो छुट्टी लेकर बैठ जाते हैं मगर कुछ क्रिया-कलाप शुरू कर देते हैं - माला लेकर जपते रहो, या लगातार कुछ क्रिया-काण्ड करते चले जाओ, किताबें पढ़ते जाओ, टेलीविज़न देखते जाओ, कुछ तो करते जाओ, तब भी परम प्रेम के अनुभव से, अनुभूति से, वंचित रह जाते हो। लोक वेद व्यापार न्यासः । ठीक ढंग से लौकिक और धार्मिक जो भी तुम करते हो न, ठीक ढंग से इन सबसे विश्राम पाना। तब तुम प्रेम का अनुभव कर सकते हो। जो व्यक्ति धर्म के नाम से लगातार कर्मकाण्ड में लगा रहता है, उसके चेहरे पर भी प्रेम झलकता नहीं है। आपने गौर किया है ? नहीं तो कितने सारे मन्दिर हैं,

जगह हैं, जगह-जगह लोग पूजा करते हैं, पाठ करते हैं, इनमें ऐसा प्रेम टपकना चाहिए - ऐसा नहीं होता। पूजा करते हैं, इधर घंटी बजाते रहते हैं, उधर एकदम क्रोध-आक्रोश, वेग-उद्धेश - इसलिए नए पीढ़ी के लोगों का पूजा-पाठ से विश्वास उठ गया - क्यों ? माँ-बाप को देखा इतना पूजा-पाठ करते हुए, जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया, जैसे के तैसे ही रहते हैं। पूजा-पाठ में कोई दोष नहीं है, मगर हम बीच में विश्राम लेना भूल गये हैं। हर पूजा-पाठ की प्रक्रिया में यह है कि पहले आचमन करो, फिर प्राणायाम करो, फिर ध्यान करो। ध्यान की जगह हम एक श्लोक पढ़ लेते हैं और मन को शान्त होने ही नहीं देते, वेद व्यापार में लगे रहते हैं। वेद का भी एक व्यापार हो गया। लोक वेद व्यापार न्यासः। निरोध करना हो तो लौकिक और वैदिक - दोनों व्यापारों से मन को कुशलता-पूर्वक निवृत्त करना है। बहुत कुशलता से करना है यह काम। ऐसा नहीं कि पूजा-पाठ सब बेकार है, ऐसा कहकर एक तरफ कर दो इसको, इससे भी नहीं होगा। लोक वेद व्यापार न्यासः - ढंग से इनसे विश्राम पाना; कुशलता पूर्वक। यह कुशलता क्या है, और आगे कैसे चलें, इसके बारे में कल विचार करेंगे।

जय गुरुदेव

# प्रेम की अभिव्यक्ति

## प्रेम की अभिव्यक्ति

मन की हर चंचलता, भक्ति की तलाश है। भक्ति ही ऐसा रहराव ला सकती है मन में, चेतना में। और भक्ति प्रेम रूप है। प्रेम जानते हैं, भक्ति को खोजते हैं। प्रेम की पराकाष्ठा भक्ति है। और यह भक्ति विश्राम में उपलब्ध है, काम में नहीं। नारद कहते हैं -

**निरोधस्तु लोक वेद व्यापारव्यासः॥**

सब तरह के काम से विश्राम पाओ। विश्राम में राम हैं। दुनियादारी के काम छोड़ते हैं, फिर कर्मकाण्ड में उलझ जाते हैं। कई बार ऐसा होता है आप कर्मकाण्ड तो करते हैं, पर मन उसमें लगता ही नहीं है। और सोचते रहते हैं कब यह खत्म होगा। हाथ में माला फेर रहे हैं - “कब इसको खत्म करें, कब उठें” इस भाव से करते हैं। मन्दिर जाते हैं, तीर्थस्थानों पर जाते हैं, किसी भय से या लालसा से। भय से पूजा-पाठ करते हैं - किसी ने डरा दिया ऐसा हो जाएगा - मंगल का या शनि का दोष हो जाएगा, कुछ बुरा हो जाएगा, धन्या नहीं चलेगा। आप हनुमानजी के मंदिर के चक्कर लगाने लगते हैं, इसलिए नहीं कि हनुमानजी से इतना प्रेम हो गया - दृष्टि तो धन्ये पर अटकी हुई है - और दुकान को लेकर ही मन्दिर जाते हैं। घर की समस्याओं को लेकर मन्दिर जाते हैं और लेकर ही वापस आते हैं। छोड़कर भी वापस नहीं

आते। छोड़ें कैसे ? प्रेम हो तभी न छोड़ें। भय से, या लोभ से, हम पूजा-पाठ करते हैं, कर्मकाण्ड में उलझते हैं। यह तो भक्ति नहीं हुई, यह तो प्रेम नहीं हुआ। आदमी थक जाता है। तथाकथित धार्मिक लोगों के चेहरे को देखिए - थके-हारे, उत्साह नहीं है, दुःख से भरे हुए हैं। भगवान् आनन्द स्वरूप हैं, सच्चिदानन्द, उसकी एक झलक नहीं होनी चाहिये क्या ? उसके साथ जुड़ जाने से अपने भीतर उस गुण का प्रकाश होना है कि नहीं होना है ? यह स्वाभाविक है। मगर हम धर्म के नाम से बड़े उदास चेहरे दिखाते हैं।

दुनिया दुःख रूप है, मगर तुम भी दुःख रूप हो जाते हो और इसको समझते हो धर्म। यह गलत धारणा है। विश्राम पाओ। भक्त वही है जो यह नहीं सोचता कल मेरा क्या होगा ? अरे, जब मालिक अपने हैं तो कल की क्या बात है ? जब मालिक हमारा है तो तिजोरी की क्या बात है ?

अगला सूत्र -

**तस्मिन्ननन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च॥**

तस्मिन् अनन्यता / उसमें अनन्यता। वह अलग, मैं अलग - इस तरह से सोचने से प्रेम हो नहीं सकता। यह हो ही नहीं सकता। तस्मिन् अनन्यता। वह मुझसे अलग नहीं है।

जैसे आपके बच्चों को कोई डॉट दे तो आप उसको डॉटने लगते हैं। आपको तो डॉट नहीं पड़ी। किसी ने आपके बच्चों के साथ ठीक व्यवहार नहीं किया हो, तो आप उस बात को अपने ऊपर ले लेते हैं। क्यों ? मैं और मेरा बच्चा कोई अलग थोड़े ही हैं। जिससे प्रेम हो जाता

है उससे भेद भी कट जाता है। प्रेम हुआ माने भेद मिटा और जब तक भेद नहीं मिटता तब तक प्रेम होता ही नहीं है। अपनापन हो, आत्मीयता हो, इतनी आत्मीयता हो, तब ही मन ठहरता है। हम जो पसन्द कर लेते हैं तब फिर मन भटकता नहीं है। जब टेलीविज़न के सामने बहुत देर तक बैठते हैं तो उसमें तल्लीन हो जाते हैं। अकेले बैठकर थोड़ी देर ध्यान में बैठो - तो यहाँ दर्द, वहाँ दर्द, उधर बेचैनी, मन दुनिया भर में भागता है। क्यों ? सारी दुनिया दिमाग में आ जाती है जब ध्यान में बैठो। क्यों ? हमने पसन्द नहीं किया, प्रेम नहीं किया, अपने आप से प्रेम नहीं किया। जब खुद से, नफ़रत से भर जाते हैं तो खुद के प्रति भी और औरों के प्रति भी नफ़रत ही करते हैं। खुद के साथ जब प्रेम होता है, औरों के साथ भी प्रेम होता है। खुद के साथ प्रेम हो कैसे, जब खुद में इतना दोष दिखता है ? तब उस दोष को समर्पण कर दो। समर्पित होने पर अनन्यता होती है। अनन्य होने पर समर्पित हो जाते हैं। यह एक दूसरे से मिले हुए हैं।

तस्मिन् अनन्यता तद्विरोध । उदासीनता । उसके विरोध में कुछ भी हो, उसके प्रति उदासीन हो जाओ। अधिक ध्यान नहीं देना। कर्मकाण्ड में नेम-निष्ठा बहुत है, प्रेम में कोई नियम नहीं।

### अन्याश्रयाणाम् त्यागोऽअनन्यता ॥

जीवन में प्रेम बढ़े, उसके लिए अनन्यभाव की आवश्यकता है। अपनापन महसूस करना। चाहे दूसरे करें या न करें, अपनी तरफ से उनको अपना मान लिया। जब संशय करते हैं कि दूसरे व्यक्ति हमसे प्रेम करते हैं कि नहीं, तब खुद का प्रेम भी कुंठित हो जाता है। हम भी

प्रेम नहीं कर पाते, हमेशा परखते रहते हैं कि व्यक्ति हमसे प्रेम करते हैं कि नहीं। चाहे वे करें या न करें, अपनी तरफ से मान लो वे भी हमसे बहुत प्रेम कर रहे हैं। वे भी हमको बहुत चाहते हैं। इस तरह से हम आगे बढ़ पाते हैं, भक्ति की तरफ। मान लेना है हमें प्यार मिल ही रहा है ताकि हम फिर उसकी तलाश में, उसकी माँग में दुःखी नहीं रहें। अक्सर आदमी दुःखी है कि हमको कोई प्यार नहीं करता। क्यों नहीं प्यार करता भई ? तुमने यह धारणा कर ली है मन में। प्यार की अभिव्यक्ति अलग-अलग तरह की होती है। प्यार तो स्वभाव है, स्वरूप है। यदि कोई तुम्हें प्यार न करे, मतलब वे तनाव से भरे हुए हैं। तुमको उनके प्रति करुणा होनी चाहिये। प्यार करना स्वाभाविक है; प्यार नहीं करना अस्वाभाविक। और क्यों नहीं करते ? अज्ञान की वजह से, दुःख की वजह से, नासमझी की वजह से कोई प्रेम नहीं करते। उनके प्रति दया होनी चाहिए। है कि नहीं ? यहाँ हर व्यक्ति प्रेम का पुतला है। उसके ऊपर मैल जम गया है। जरा पौछा लगा दो। अन्याश्रयाणाम् त्यागः अनन्यता। अनन्य हो जाओ। उसके साथ एक हो जाओ। एकता महसूस करना।

एकता तभी महसूस करते हैं जब हम दूसरा आश्रय नहीं ढूँढ़ते। एक ही आश्रय हो तब प्रेम की गहराई में हम उतर सकते हैं। कई आश्रय हों तो उसमें आश्रित नहीं हैं, हम, जो आश्रित व्यक्ति है वह मुख्य हो जाता है; आश्रय नहीं। प्रेम माने आश्रय को प्रधानता देना। आश्रित व्यक्ति का मिट जाना प्रेम है। बात समझ में आ रही है? भगवान के लिए हम हों, तो यह भक्ति हुई। भगवान को हम इस्तेमाल करें अपने काम के लिए, तो किसकी प्रधानता हुई, भगवान की या हमारी ? हमारे

लिए हम भगवान को इस्तेमाल करते हैं, जैसे साबुन या स्कूटर। कभी भय हुआ तो भगवान को इस्तेमाल कर लिया। कोई दवा है ? लक्ष्य को ही साधन बना देते हैं। जब पहला कदम भूल का होता है तो फिर हर कदम गलत दिशा में जाते हैं। इसको भक्ति नहीं कहते हैं। भगवान भी बहुत बड़ा व्यापारी है। हम क्या करते हैं, कचरा समय देते हैं सत्संग के लिए, थर्ड क्लास टाइम, जो किसी काम के लिए नहीं है, वह समय। जब कोई शादी-विवाह नहीं, कोई पार्टी नहीं, कुछ करने को नहीं हो, उस समय सोचते हैं कि सत्संग कर लेते हैं; भगवान का ध्यान कर लेते हैं। थर्ड-क्लास टाइम दोगे तो थर्ड-क्लास ही उसका फल भी मिलेगा। फर्स्ट-क्लास टाइम दो तो फल भी वैसा ही मिलता है। और 'फल' के लिए नहीं समय देना...। अन्याश्रयाणाम् त्यागः। एक पर आश्रित। उस पर पूर्ण दृढ़ विश्वास।

लोक वेदेषु तदनुकूलाचरणम् तद् विरोधिषूदासीनता॥

इसका मतलब यह नहीं है कि प्रेम में कोई नियम नहीं है, विधि नहीं है, जो चाहे सो कर सकते हो, मतलब हम औरों को भी मुसीबत में डाल दें। प्रेम तुम्हारी आत्मा है, आत्म-साक्षी बनकर चलो, चाहे दुनिया के काम हों या धार्मिक काम हों। आप हरिद्वार में जाते हो, सब पंडे घेर लेते हैं - ये करो, वो करो, यहाँ पर तुम इतनी दक्षिणा चढ़ाओ नहीं तो ऐसा हो जाएगा, वो हो जाएगा, संकल्प करा देते हैं। आप वहाँ बहुत बेचैन हो जाते हैं - “अरे यह करना ही पड़ेगा” ! फिक्र मत करो, भगवान कोई सज्जा देने के लिए नहीं बैठा है वहाँ ऊपर, डण्डा लेकर। उनसे अनन्यता महसूस करो। तेरा सखा है, पिता है, माँ है, इस तरह से सम्बन्ध को महसूस करो। वे हमारे अपने हैं। जो अपने होते हैं वे हमें

दण्ड देंगे ? लोक वेदेषु तदनुकूलाचरणम् तद् विरोधिषूदासीनता । आचरण में प्रेम के विरुद्ध कुछ भी दिखे उस पर उदासीन मत हो । प्रेम कोई भावुकता नहीं है । “अरे बेटा, मैं तेरे बिना जी नहीं सकता, तू मेरे पास ही बैठ ।” यह कोई प्रेम है ? तुम प्रेम हो । तुम प्रेममय हो । तुम बने ही हो उस वस्तु से जिसको प्रेम कहते हैं । समाज के नियमों को सम्मान देना, उन नियमों पर चलना । मनमानी नहीं करना । प्रेम के नाम से हम मनमानी करने लगते हैं ।

अगला सूत्र -

**अवतु निश्चयदाढ्यादूर्ध्वम् शास्त्ररक्षणम् ॥**

ठीक है भक्ति में, प्रेम में, तुम शास्त्र से, एक विधि से परे हो, फिर भी अच्छा है दुनिया में एक नियम पर चलना । शास्त्र माने क्या ? अनुभवी व्यक्ति जिस बात को सिद्ध कर चुके हैं, जिस बात की सामान्यता को दिखलाये हैं, उसको शास्त्र कहते हैं । ऐसे-ऐसे करने से ऐसा होता है । हर विद्या एक शास्त्र है । गणित शास्त्र है । तुमने तो नहीं बनाया गणित को । भूगोल शास्त्र है, विज्ञान शास्त्र है । इसी तरह अध्यात्म भी शास्त्र है, अनुभवी व्यक्तियों की वाणी । हजारों साल परिशीलन करके एक संग्रहण किया, उस संग्रहीत ज्ञान को शास्त्र कहते हैं । उसको सम्मान देना । तुम्हारी खुद की कोई कल्पना हो सकती है, कोई भ्रम हो सकता है । शास्त्र के पथ पर चलो -

**अन्यथा पातित्या शङ्कया ॥**

नहीं तो गिरने की सम्भावना है । मनमानी करने से गिरने की सम्भावना है । दुनिया में भी ऐसे चलना है ।

## लोकोऽपि तावदेव, भोजनादिव्यापारस्त्वाशरीर धारणावधि ॥

जैसे ध्यान में, पूजा में, नियम हैं वैसे ही दुनिया में भी नियम हैं। भोजन में भी नियम से चलो। यह नहीं कि हम तो प्रेम-स्वरूप हैं - चाहे कुछ खा लेंगे - तो फिर बीमार पड़ जाओगे। भोजन की विधि, भोजन का नियम, सोने का नियम, इस पर भी ध्यान देना है। जब दोनों हाथ ऐसे रखते हैं जैसे अंजलि। एक अंजलि में जितना भोजन समाता है, उतना ही एक समय पर भोजन लेना चाहिए। उतना ही पाचन कर सकता है तुम्हारा पेट। मगर हम उसको टूँसते रहते हैं। सुपाच्य होना चाहिए भोजन। खाना खाने के बाद पच जाना चाहिए। एक ही पाप है - जब खट्टी ढकार आये सुबह उठने पर, इसको पाप कहते हैं। जो भोजन तुमने खाया है, वह पचा नहीं अभी तक। अपाच्य भोजन शरीर में टोकिसन बनकर दिमाग पर असर करता है, तो सोचने का ढंग बदल जाता है।

इसी तरह औरों का भी ध्यान रखना। सबको सम्मान देना। तब तुम प्रेम की गहराई में उतर सकते हो। जीवन में दो माँग हैं - एक तो सम्मान, दूसरा प्रेम। हर व्यक्ति चाहता है उसका मान-सम्मान बना रहे और चाहता है प्रेम बना रहे। मगर इन दोनों का स्वभाव विपरीत है। मान में या सम्मान में दूरी की आवश्यकता है। प्रेम दूरी नहीं सह सकता, प्रेम दूरी भिटाना चाहता है। प्रेम में इतना करीब होना चाहते हो तुम, सब कुछ जानना चाहते हो जिनके प्रति प्रेम होता है। ज़रा सी भी दूरी पसन्द नहीं होती है। तो यह छन्द प्रेम को द्वेष में बदल देता है। मगर भक्ति ही एक ऐसी कड़ी है जिसमें जितना करीब जाओ उतना

प्रेम बढ़ता है। उतना ही सम्मान भी बढ़ता है। साधारण प्रेम और भक्ति में यही फ़र्क है। भक्ति की गहराई सम्मान की ऊँचाई पर ले जाती है।

**तल्लक्षणानि वाच्यन्ते नानामतभेदात् ॥**

इस भक्ति का लक्षण क्या है ? आगे बताते हैं अलग-अलग लोगों का अलग-अलग मत है, अभिप्राय है। इसको हम देखते हैं -

**पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः ॥**

पराशर ऋषि कहते हैं पूजा में अनुराग हो जाना भक्ति है। और पूजा माने क्या ? सबका सम्मान। जो प्रेमपूर्वक सम्मान करे, सत्कार करे, वह पूजा है। जिसमें ममता भी हो, व्रात्सल्य भी हो, स्नेह भी हो, वह पूजा है; सख्ता भाव भी हो, आदर भी हो और वात्सल्य भी हो, उसको पूजा कहते हैं।

पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः। पराशर ऋषि कहते हैं पूजा में अनुराग हो जाना। आप जो भी पूजा करते हो यह एक नकल है जो भगवान आपकी कर रहे हैं, यह समष्टि आपकी कर रही है। आप क्या करोगे पूजा ? पानी बरसाती है आपके ऊपर, आप अर्घ देते हो। समष्टि तुम पर फल चढ़ा रही है। यह पृथ्वी धान उगा रही है, तुम पर चावल चढ़ा रही है। तरह-तरह के फूलों से तुम्हारी पूजा होती है और इतने सारे पक्षी तुम्हारे लिये मंत्र उच्चारण करते हैं। सारी सृष्टि पूजा में तल्लीन है और तुम्हारी पूजा कर रही है। चाँद और सूरज से आरती उतार रहे हैं भगवान तुम्हारी रोज-रोज; सूर्य और चन्द्रमा को लेकर भगवान तुम्हारी आरती उतार रहे हैं और उसकी नकल कर रहे हैं हम - आरती करते हैं, चावल चढ़ाते हैं, पानी चढ़ाते हैं, फूल चढ़ाते हैं।

जैसे कोई बच्चा कहता है न, “मम्मी मुझे भी खाना बनाना है, मैं डॉक्टर बन जाता हूँ, तेरे को इन्जेक्शन देता हूँ;” जैसे बच्चे करते हैं इस तरह हम एक नकल करते हैं - जो हमारे लिए किया जा रहा है रोज़-रोज़, एक कृतज्ञता के भाव से। उसी को पूजा कहते हैं। हम तो कृतज्ञ हो जाते हैं; धन्य भागी हम हों, तभी प्रेम जग सकता है। जब शिकायत करते रहते हैं चौबीस घण्टे तो प्रेम की गन्ध भी नहीं मिलती। प्रेम और शिकायत विरुद्ध ध्रुव से हैं - एक उत्तर ध्रुव तो दूसरा दक्षिण ध्रुव। जिन्दगी-भर शिकायत में गुज़र जाए तो आनन्द कहाँ है, सुख कहाँ है, शान्ति कहाँ, कुछ नहीं है। जो हमने पा लिया है उसके प्रति भी हम धन्यवाद नहीं दे सकते क्या ? जिसने सब-कुछ दिया है उसके प्रति भी हम धन्यवाद नहीं दे सकते ? जो हमारे पास है, उससे भी हम परेशान हैं, जो नहीं है, उसके बारे में भी हम परेशान हैं। जो हमने पा लिया उसके लिए भी शिकायत करते रहते हैं, जो नहीं पाया उसके लिए भी शिकायत करते रहते हैं। पूजा माने शिकायत से दूर होना। एक पवित्रता का भाव। पवित्रता के प्रति, एक पवित्र भाव के प्रति अनुराग हो जाना, सम्मान देना, सत्कार करना, यह एक लक्षण है। जिसमें भक्ति उदय हो गई है वह व्यक्ति सबका सम्मान करेगा। हर वस्तु को सम्मान से देखेगा, चाहे जूता ही क्यों न हो, उसको उठा कर ऐसे नहीं फेंकेगा। सिर्फ़ इस देश में जूते को भी पूजा जाता है। यह महानता है। दक्षिण भारत में आज भी रिवाज़ है पूजा के दिन बस, साइकिल, मोटर गाड़ी, सब को पूजा जाता है। और बस के ऊपर इतनी माला डाल देते हैं, ड्राइवर को दिखाई भी नहीं देता कुछ आगे। इतना शृंगार कर के बस और ट्रक चलाते हैं, साइकिल, गाड़ी, सब। हर वस्तु जो जीवन में उपयोगी है,

जिससे हमें सुख-सुविधा मिली है, उन सबको सम्मान से देखने का विधान पूजा है। पूजा के बगैर जीवन सूखा है। यह पराशर ऋषि का मत है - सम्मान देना। दूसरा बताते हैं -

### कथादिष्टिं गर्गः ॥

और गर्ग ऋषि का कथन है - गुण-गान करना, जिसके बारे में बात करना। जैसे घर में कोई बेटा हो जाता है, बेटी हो जाती है। उनके माँ-बाप को, और जो वृद्ध हैं, उनके लिए भी, वही एक विषय हो जाता है बात करने के लिए। उनको वह बहुत विशेष लगने लगता है। उनके बच्चे ने ऐसा कर दिया। उसके बारे में बातचीत चला दो, बस, बन्द नहीं होगी। आप किसी माता-पिता से उनके बच्चे के बारे में ज़रा सा छेड़ दो, फिर तुम आराम से एक घण्टे तक सो भी सकते हो। एक-डेढ़ घण्टे तक तुमको कथा सुनाएँगे। उसमें रम जाते हैं वे - यह भी नहीं देखते जिनको सुना रहे हैं, वे सुन भी रहे हैं कि नहीं। मस्त हो गये बोलते-बोलते। जहाँ प्रेम हुआ, उसके बारे में बोलना बन्द नहीं होता। उसी में रस आने लगता है। उस कथा से भाव भी जग जाते हैं। समय के परे चले जाते हैं, बात कर सकते हैं जिस विषय पर हमें अनुराग हो गया। है ना ? किसी को क्रिकेट से प्रेम हो गया, उनके साथ क्रिकेट की बात छेड़ दो, फिर देखो, खाना-पीना सब भूल जाएँगे बैठेंगे, चार-पाँच घण्टे तक तुम्हें भाषण देंगे। हर व्यक्ति किसी न किसी चीज़ पर कथा करता ही है। कथादिष्टिं गर्गः ।

### आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः ॥

शाण्डिल्य एक ऋषि हुए। यदि कोई काम ठीक से नहीं करता है, मनमानी करता है, तो कहते हैं शाण्डिल्य पंथी करता है, वैदिक लोगों

की भाषा में यह मशहूर है। काम ढंग से न हो, पर पूरा सम्पन्न हो जाए, तो कहते हैं शाण्डिल्य तंत्र से, माने जैसे-तैसे कर दिया। मतलब आखिर में ठीक हो गया। शाण्डिल्य ने भी भक्ति के बारे में बहुत कुछ कहा। नारद के बाद शाण्डिल्य के भक्ति सूत्र मशहूर हैं।

**आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः** आत्मा में अविरोध रूप से रमण करना। कई बार आपको ऐसा हुआ है जब आप बहुत खुश होते हो तो मन में लगता है ऐसे नहीं खुश होना चाहिए। मान लो आपका कोई सम्मान करे, आपकी कोई तारीफ़ करे - तारीफ़ करने से भीतर कुछ फूलता हुआ महसूस करते हैं आप, नहीं ? फिर हम क्या करते हैं? “अरे, ऐसा तो नहीं होना चाहिए, यह तो मेरा अहंकार था।” एकदम अपनी खुशी पर भी पानी केर देते हैं। कितनों ने ऐसा किया है, बताओ ? खुशी में मन फैलता है, दुःख में वही मन सिकुड़ता है। और जो फैलता और सिकुड़ता है, वह क्या है ? यह मन क्या है ? यह जानना है। **आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः**। इसको देखो जिसका प्रस्फुरण होता है, उस पर ध्यान दो, फिर तुम सुख और दुःख के बाहर हो जाओगे। सुख की अनुभूति और दुःख की अनुभूति जहाँ से हो रही है, उस वक्त स्थिति क्या है ? चेतना की स्थिति क्या है ? इस पर ध्यान दो। कुछ फैलता है, कुछ सिकुड़ता है। अविरुद्ध रूप से इस आत्मा में रमण करना, सब विरोधों से बाहर हो जाना, सब विरोधों के पार हो जाना भक्ति है। यह शाण्डिल्य का मत है।

**नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारता तदविस्मरणे  
परमव्याकुलतेति च॥**

नारद अब अपना मत देते हैं। पराशर ने कह दिया पूजा में अनुराग। गर्ग ने कह दिया कथा में अनुराग रखो। शाण्डिल्य ने कह दिया कि आत्मा में रमण करो, ध्यानस्थ हो जाओ, मग्न हो जाओ, अपनापन देखो सब में। सब तो है ही नहीं। ‘सब’ कहना ही भूल है, तुम ही तुम हो। तुम्हारे सिवा कोई है ही नहीं। अब नारद अपना मत रखते हैं, कहते हैं, तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति च।

यदि यह बात समझ में नहीं आती हो तो यह जान लो - सब कुछ उसको समर्पण कर दो। जो कुछ भी तुमने किया, बस समझो मैंने उसको दे दिया। हर आचरण को उसमें समर्पित कर दो। और दूसरा लक्षण क्या है ? भक्ति का लक्षण बता रहे हैं। भक्ति होने पर क्या होता है ? हम सब कुछ समर्पित कर देते हैं, और खुद भी समर्पित हो जाते हैं। यह भक्ति का लक्षण है। सब आचरणों को समर्पित कर देना भक्ति का लक्षण है। ऐसा नहीं कि सिर्फ़ गुण तुम्हारा, अवगुण मेरा है - यह कोई भक्ति नहीं हुई। अवगुण को भी समर्पित कर देना भक्ति हुई। अवगुणों को पकड़कर रख देने से आत्मग्लानि होती है। और आत्मग्लानि से निकलना बहुत मुश्किल है। जब आत्मग्लानि से मन भर जाता है, खुद पर इतना दोषारोपण कर लेता है, फिर दूसरों पर दोषारोपण करना बहुत आसान हो जाता है। जब खुद को दोषी ठहराता है व्यक्ति तो दूसरों को दोषी ठहराने में ज्यादा देर नहीं लगती है।

तदर्पिता खिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति च।

कभी बहुत अधिक व्याकुल हो जाना भी भक्ति का लक्षण है। जिस-जिस क्षण में तुम भूल जाते हो उस चेतना को, शक्ति को, भक्ति

को, उन-उन क्षणों में तुम अति व्याकुलता से पीड़ित होते हो। ये प्रेमियों का स्वभाव है। प्रेम के साथ-साथ व्याकुलता जुड़ जाती है। कभी इतना प्रेम में रहते हैं, कभी-कभी व्याकुल हो जाते हैं। प्रेम नहीं होता तो शायद व्याकुलता भी नहीं होती। मीरा का भजन है - नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीत न करियो कोय। यह अनुभव की बात है। व्याकुलता भी गहराई पर ले जाती है तुम्हारे मन को, जैसे प्रेम।

अस्त्येवमेवम् ॥

यथा व्रजगोपिकानाम् ॥

ऐसा हुआ है, जैसे व्रज की गोपियों को हुआ। गोपियों के प्रेम में क्या था, वे इतने प्रेम में थीं फिर भी कृष्ण का सम्मान कम नहीं हुआ। अकसर जब हम प्रेम में होते हैं तो फिर माँग करने लगते हैं, अधिकार जमाने लगते हैं, फिर दोष देखने लगते हैं। बहुत प्रेम में पड़ जाते हैं फिर हम कहते हैं, “हमने इतना प्रेम किया तुमसे, तुमने क्या किया मेरे लिए, बताओ ?” अपने प्रेम पर सवार हो जाते हैं। “देखो मैंने कितना प्रेम किया; मैंने कितनी मेहनत की। तुमको पढ़ाया, बड़ा किया तुमको ये किया, वो किया, पैदा किया” - बच्चों पर अकसर माँ-बाप का यही दोषारोपण रहता है। बहुत प्रेम करते हैं, फिर उन पर सवार हो जाते हैं। तुमने क्या किया मेरे लिए ? फिर वह बच्चा आत्मग्लानि से भर जाता है। धर्म संकट में पड़ जाते हैं। जहाँ कर्तव्य की बात होती है वहाँ सौन्दर्य नहीं, प्रेम नहीं। कर्तव्य हो गया तो प्रेम खत्म हो गया। कर्तव्य और प्रेम अलग-अलग हैं, समझ रहे हैं न; कर्तव्य एक बोझ है सिर पर, प्रेम भीतर की चाह है।

तत्रापि न माहात्म्यज्ञानं विश्वसृत्यपवादः ॥

गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में होने पर भी उनके मन में कभी असम्मान नहीं हुआ, शिकायत नहीं हुई। शिकायत होती भी तो वह भी ऊपर-ऊपर की, भीतर से नहीं। भीतर से सम्मान ही रहा कृष्ण के प्रति। ऐसा नहीं होता तो -

तदविहीनं जाराणामिव ॥

वैश्या के जैसा हो जाता यदि ऐसा न होता; यदि प्रेम नहीं होता।

नास्त्येव तस्मिन् तत्सुखसुखित्वम् ॥

उसमें वह सुख नहीं है, अपने प्रेमास्पद को प्रेम देने, सुख देने की चाह नहीं। प्रेम का एक यह लक्षण होता है जिसको प्रेम करें, उसको सुख मिले, उसको आराम मिले, उसको पसन्द हो। बहुत से गाने हैं, जो तुमको पसन्द है, वही करेंगे हम। वही बात करेंगे, जो तुमको पसन्द हो। उसमें एकता है, आत्मीयता है, अनन्यता है। तुम्हें जो चाहिए, वही हो, तुम्हें जो पसन्द हो, वही हो, यही वाणी भगवान् तुमको रोज़-रोज़ कहते हैं, हर सन्दर्भ में कह रहे हैं, हर तरह से कह रहे हैं। यह सारी सृष्टि तुम्हारे लिए रची है। इसको देखकर आनन्दित हो जाओ। मस्त हो जाओ। तुम्हारा मन बहलाने के लिए तो इतनी सारी विविधताओं को बनाया गया है; एक तरह की सब्जी बनाकर नहीं छोड़ दिया, तरह-तरह की सब्जी बनाई। एक तरह का फूल नहीं बनाया; तरह-तरह के फूल उगाये गये। तरह-तरह के संगीत, तरह-तरह के भोजन, तरह-तरह के दृश्य, यह सब तुमको चौंकाने के लिए, तुमको जगाने के लिए। तुमको खुश करने के लिए ही तो किया गया है। फिर भी हम चेहरा लटका

करके, दुःखी होकर, गम्भीर होकर बैठे रहते हैं। हर माता-पिता चाहते हैं कि बच्चे हँसते रहें, खेलते रहें, खिलखिलाकर हँसें। यही समस्ति भी चाहती है तुमसे। ऐसी मुस्कुराहट, ऐसी हँसी, जो तेरे दिल से उपजे, तेरे कण-कण से निकले; यही पूजा है, यही भक्ति है। हँसो - यही भक्ति है।

### जय गुरुदेव

# प्रेम अपथ की सीढ़ी

## प्रेम अपथ की सीढ़ी

कहते हैं, भक्ति जो है न, वह कर्म, ज्ञान और योग से भी अधिक है। यह अगला सूत्र है -

**सा तु कर्म ज्ञान योगेभ्योऽप्यधिकतरा ॥**

भक्ति जो है वह कर्म से अधिक है, ज्ञान से अधिक है और योग से भी अधिक है। क्यों ?

**फल रूपत्वात् ॥**

हर कर्म का फल प्रेम होना चाहिए। यदि किसी कर्म का फल प्रेम में परिणत नहीं होता है तो वह कर्म बेकार है। इसी तरह हर ज्ञान का लक्ष्य है, तुम्हें आनन्द के उन्माद से भर देना। ज्ञान का लक्ष्य क्या है ? तुम आनन्दित हो जाओ। प्रेम में ढूब जाओ। तो प्रेम ही ज्ञान का फल है। और प्रेम ही योग का भी फल है। योग क्यों करोगे ? जीवन में ऐसा प्रेम उभरे, हर पल, हर दिन, हर रात - जीवन प्रेममय हो जाए। हर काम में प्रेम झूलके। परम प्रेम ही योग का भी लक्षण है। तो सीधे-सीधे भक्ति में जाएँ। भक्ति कर्म, ज्ञान और योग से भी अधिक है, कई गुणा अधिक है, क्योंकि वह फल रूप है। जैसे कोई अनाज लाता है, फिर उसका आटा बनाता है, फिर उसकी रोटी बनाकर, पका कर खाना खाता है। सीधे बनी-बनाई ready-made रोटी खरीदकर ले आएँ। भक्ति फलरूप होने के कारण कर्म - ज्ञान से भी अधिक तर है।

अगला सूत्र बताया नारद ने -

**ईश्वरस्याप्यभिमान द्वेषित्वात् दैन्यप्रियत्वात् च ॥**

इस ईश्वरीय शक्ति को भी दीनता पसन्द है। क्यों ? दीनता में तुम तरल हो जाते हो, सूक्ष्म हो जाते हो, सहज हो जाते हो और सहजता, तरलता, प्रेम, यह सब आत्मा का ही स्वभाव है, ईश्वर का स्वरूप है। अपना स्वरूप, अपना स्वभाव स्वयं को पसन्द है। अभिमान इससे दूर हो जाने का नाम है। प्रेम से दूर होने का नाम अभिमान है। प्रेम को नहीं पहचानने का नाम अभिमान है। अहंकार में अपनापन नहीं होता, अपनापन लाने की चेष्टा होती है। प्रेम जो है, भक्ति जो है, वह कर्म, ज्ञान और योग से भी अधिक है, क्योंकि ये फलस्वरूप हैं, यह इन सब का फल ही है, इसलिए इसी को पकड़ो। योग करते क्यों हो? ताकि तुम प्रेममय हो जाओ। तुम ज्ञान की पूँजी बन जाओ।

**तस्याः ज्ञानमेव साधनमित्येके ॥**

कुछ लोग कहते हैं ज्ञान ही इसके लिए साधन है। ज्ञान न होगा तो भक्ति होगी कैसे ? बात समझ में आ रही है ? यदि तुम्हें रसगुल्ला चाहिए, इसका मतलब तुम रसगुल्ले के बारे में कुछ जानते हो। जिसको जाना नहीं, उसके प्रति चाह उठेगी भी कैसे ? जानने से प्रीति होती है। **तस्याः ज्ञानमेव साधनमित्येके** - कुछ लोग कहते हैं भक्ति जीवन में उदय होने के लिए ज्ञान ही साधन है। ज्ञान के बिना भक्ति हो नहीं सकती।

कुछ और लोग कहते हैं -

**अन्योन्याश्रयत्वमित्यन्ये ॥**

ये एक दूसरे के सहयोगी हैं, एक दूसरे के पूरक हैं। ज्ञान होना हो तो भक्ति की ज़रूरत है, भक्ति होनी हो तो ज्ञान की ज़रूरत है। माने रसगुल्ला की चाह, रसगुल्ला को जानने से उठती है। और चाह होने पर

ही तुम उसके बारे में जान सकते हो। समझ में आ रही है बात ? जब तुम किसी वस्तु की चाह करते हो तब उसके बारे में जानने की कोशिश करते हो। योग की चाह उठी, तो फिर योग क्या है, इस गहराई में तुम उतर जाते हो। चाह होने से ज्ञान होता है, चाह होने से ही कर्म होता है, मतलब प्रीति और ज्ञान एक दूसरे के सहयोगी हैं, एक दूसरे पर आश्रित हैं। अब मान लो आप जानते हैं रसगुल्ला क्या है, माने रसगुल्ले का ज्ञान हुआ। ज्ञान होते ही रसगुल्ला खाना चाहते हो। तो यह चाह उठी, उसके प्रति लगाव हुआ, प्रेम हुआ, प्रीति हुई, भक्ति हुई। और जब जानते हो और चाहते भी हो, तो चुप बैठोगे क्या? तब खोजने निकलोगे। वह कहाँ पर मिलता है, यह जानने पर उसको खरीदने जाओगे, यह कर्म हुआ। रसगुल्ले के बारे में जानना ज्ञान हुआ, उसको चाहना भक्ति हुई, और उसको खरीदने का प्रयास कर्म हुआ। यह सब एक हुआ न ? एक दूसरे पर आश्रित। तो अन्योन्याश्रयत्वमित्यन्ये। कुछ लोग कहते हैं ये एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।

**स्वयं फलरूपतेति ब्रह्मकुमाराः ॥**

नारद कहते हैं यह भक्ति जो है स्वयं फलरूप है। एक तरह से साधन भी है और एक तरह से लक्ष्य भी है। दोनों एक साथ है, इसीलिए भक्ति श्रेष्ठ है।

**राजवृह भोजनादिषु तथैव दृष्टत्वात् ॥**

**न तेन राजा परितोषः क्षुच्छान्तिर्वा ॥**

उसके लिए उदाहरण देते हैं, जैसे भोजन के बारे में सुनने से भूख नहीं मिटती, भोजन के बारे में जानने से भूख नहीं मिटती, भोजन

करना पड़ेगा। इसी तरह से ज्ञान होने पर, समझ आने पर शान्ति नहीं मिलेगी, भूख नहीं मिटेगी, उसको पाना पड़ता है। भक्ति ही वह है। इसलिए कहते हैं सिर्फ ज्ञान से ही काम नहीं चलेगा, अनुभव में लाना पड़ेगा, जैसे भोजन है, जैसे परितोष है, कोई पुरस्कार है। पुरस्कार मिले, मगर जब तक हाथ में नहीं आये, तब तक पुरस्कार कहीं भी हो, कितने भी हों, उनका क्या फायदा ? पद्मश्री तो होगा वहाँ राष्ट्रपति भवन में, जब तक तुम्हारे पास नहीं आता, तब तक तुम पद्मश्री कैसे लगाओगे ? वैसे पद्मश्री लगाना कोई विशेष बात नहीं है। इस तरह सिर्फ समझने से काफ़ी नहीं है, भक्ति को जीवन में अनुभव करना है।

### तरमात् सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः ॥

इसीलिए उसी को चाहो, यहाँ चाहो भी ठीक नहीं है, उसी को पकड़ो, भक्ति को पकड़ो, प्रेम को पकड़ो।

अकड़ अज्ञान का सूचक है। कोई तन के चले, वह अपने अज्ञान का प्रदर्शन कर रहा है। अहंकार या दुरहंकार और प्रेम साथ-साथ हो ही नहीं सकते हैं।

इस दुनिया में सबसे बड़ी ताकत है प्रेम और वह प्रेम ही तुम्हें कमज़ोर बना देता है। एक तरफ ज्ञान से तुम मजबूत होते हो। दूसरी तरफ वह ज्ञान ही तुम्हें दीन बना देता है। क्यों ? ज्ञान अहंकार को चोट लगाता है। ज्ञान की हर बूँद हमारे अहंकार के लिए विष है। जरा जागकर तो देखो, हो कौन आप ? यह जीवन क्या है ? यह समष्टि, अरबों सालों से चली आ रही है, और चलती चली जायेगी। तुम्हारा जीवन क्या है ? इसमें एक बूँद भी नहीं। ६०-७०-८०-९०० साल का

यह जीवन क्या है ? अरबों-खरबों तारे, सितारे हैं। पता नहीं कितने ऐसे भूमण्डल हैं। उनमें से एक यह सूर्यमण्डल, उनमें से एक छोटी सी पृथ्वी, उसमें आप। ज़रा दूर हवाई जहाज से देखेंगे तो नज़र भी नहीं आएँगे, चींटी के बराबर भी नहीं होंगे आप। अहंकार माने वास्तविकता का बोध नहीं होना, वास्तविकता से कट जाना - बोध में, ऐसे तो वास्तविकता से दूर तो हो ही नहीं सकते। ज्ञानी व्यक्ति अहंकारी हो नहीं सकते और अहंकारी व्यक्ति कभी प्रेमी हो ही नहीं सकते। चाहे ज्ञान हो या प्रेम हो, वह तुमको दीन बना देता है। यह कैसी विडम्बना है ? सबसे बड़ी ताकत तुम्हारे पास होते हुए भी तुम दीन हो जाते हो। इसलिए ईश्वर को कहा दीनानाथ, अहंकारी के नाथ नहीं कहा। दीन होते ही दीनानाथ के साथ हो जाते हो।

फिर कहते हैं -

**तस्याः साधनानि गायन्त्याचार्यः॥**

इसकी साधनाओं को गाते हैं, यह विशेषता है। साधना को बता देना एक शुष्क बात हुई। भक्ति में कहते हैं साधनाओं को गाते हैं। मतलब मार्ग भी रसमय, हर कदम रसमय, रुचिकर, सारस्यपूर्ण। जीवन में भक्ति कैसे उदय हो सकती है ? तस्याः साधनानि गायन्त्याचार्यः ।

**तत् तु विषयत्यागात् सङ्गत्यागात् च॥**

जब कोई वस्तु आपको बहुत सुलभता से प्राप्त नहीं होती, तब उसके प्रति लगाव होता है। आप किसी वस्तु को देखते हैं, व्यक्ति को देखते हैं, परिस्थिति से आकर्षित होते हैं, और वह जिससे आप आकर्षित

हैं, यदि वह तुरन्त मिल जाए आपको, तब वह आकर्षण, आकर्षण के रूप में ही रह जाएगा, कुछ समय के लिए, फिर विकर्षण हो जाता है। फिर उसी से राग हुआ, उसी से द्वेष होने लगता है। अलग-अलग परिस्थिति में हर एक व्यक्ति आकर्षित होता है। मगर उस आकर्षण में भीतर से उठी लहर यदि तुरन्त ही तृप्त हो जाए, फिर वह आकर्षण प्रेम के रूप में परिणत नहीं होता। जिससे आकर्षण हुआ उसके मिलने में यदि मुश्किल पड़े, तब वह आकर्षण ही मन के स्तर पर प्रेम के रूप में परिणत होता है। शरीर के स्तर पर जो आकर्षण हुआ, वह मन के स्तर पर प्रेम हुआ। और मन के स्तर पर जो प्रेम हुआ, आत्मा के स्तर पर, आगे चलकर, वही भक्ति हो जाती है। जब प्रेम होता है तब मिटने की भी आकांक्षा उसके साथ-साथ हो जाती है। कहते हैं मैं मिट जाऊँ, रोने को दिल करता है। रोना क्या है ? मिटने की ही एक प्रक्रिया है। समाप्त होने का एक ढंग है। बूँद सागर में समाने की एक कला है।

आकर्षण और भक्ति में सिर्फ मात्रा का भेद है। एक ही शक्ति है। एक ही शक्ति हमारे शरीर में अलग-अलग भाव, अलग-अलग रूप में प्रकट होती है। इसी को कहते हैं सात चक्र, सात स्थान हैं हमारे शरीर में जहाँ पर संवेदना और भाव का मिलन, प्रस्फुरण, अभिव्यक्ति है। एक ही चेतना है। एक चेतना मूलाधार चक्र पर जीवन में उत्साह के रूप में अभिव्यक्त होती है या जड़ता के रूप में अभिव्यक्त होती है।

वही चेतना काम केन्द्र पर, उससे ऊपर, स्वाधिष्ठान चक्र पर चलकर, काम वासना के रूप में प्रकट होती है या सृजनात्मक, रचनात्मक कृत्य के रूप में प्रकट होती है। कोई यदि काम वासना में बहुत खो जाते हैं तो वे फिर जड़ हो जाते हैं। आप यदि रचनात्मक काम में लगे हों तो काम वासना सतायेगी नहीं। गौर किया है आपने, जब आप बहुत

रचनात्मक काम में लगे हुए हैं, समय सीमित है, कोई काम जल्दी खत्म करना है, और दिमाग काम में लग गया है, तब काम वासना सताती नहीं। जब करने के लिए कुछ भी नहीं है, तब काम वासना और काम वासना से फिर जड़ता आती है, जड़ता से फिर काम वासना।

और वही ऊर्जा, ऊपर चलकर, नाभि में, मणिपूर चक्र पर चार प्रकार से अभिव्यक्त होती है - ईर्ष्या, उदारता, लोभ और सन्तोष, खुशी। उदार व्यक्ति का चिह्न है बहुत बड़ा पेट। जब ईर्ष्या होती है तो कुछ पेट में होता है। संतोष का सूचक भी पेट। चीनी हँसता बुद्ध, सांताकलॉज़, गणेशजी (Laughing Buddha, Santa Claus, Ganeshji) सबका बड़ा पेट आनन्द का सूचक है - मणिपूर चक्र।

रचनात्मक काम करने से आनन्द, खुशी, सन्तोष, उदारता - ये सब हमारे भीतर प्रस्फुरित होते हैं और यही चेतना ऊपर चलकर, हृदय केन्द्र पर, प्रेम, द्वेष और भय के रूप में प्रकट होती है। आप ज़रा देखो, जब भय होता है तब कहाँ संवेदना होती है ? कहाँ महसूस होता है ? हृदय के स्थान पर - दिल धक्क-धक्क करता है। वही चेतना प्रेम में भी, दिल के आस-पास, एक अनूठा अनुभव, अनुभूति, संवेदना को पैदा करती है। और वही चेतना, जब द्वेष होता है, तब भी दिल में कुछ होता है।

अब वही चेतना ऊपर चलकर कंठ स्थान पर कृतज्ञता या दुःख के रूप में अभिव्यक्त होती है। कहते हैं न, कंठ भर आया - जब आभार महसूस करते हो, तो कुछ होता है गले में। और वही चेतना दुःख के रूप में भी उधर प्रकट होती है। जब आप दुःखी होते हो तब भी गले

में कुछ होता है, घुटन होती है।

वही चेतना फिर दोनों भौंहों के बीच में चलकर क्रोध या होश के रूप में प्रकट होती है। जोश आये या होश आये, दोनों भौंहों के बीच में इसकी अनुभूति होती है। हम कहते हैं न तीसरा नेत्र; शिवजी को जब गुस्सा आया तो उन्होंने तीसरी आँख खोली, तो सब जल गया। और तीसरी आँख ज्ञान का भी सूचक है। एक ही चेतना - जब ज्ञान होता है तब गुस्सा नहीं, जब गुस्सा होता है तब ज्ञान नहीं।

और वही चेतना चलकर सहस्रार पर, सिर की छोटी पर, आनन्द के रूप में अभिव्यक्त होती है। इस ऊर्ध्वगामी और अधोगति चेतना को, इसी को कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। यह शरीर एक कुण्ड है। इस कुण्ड में जो शक्ति है, वही कुण्डलिनी शक्ति है। जब ध्यान से, गौर से, तुम इसको देखोगे, तब यह ऊर्ध्वगामी चेतना होती है। भक्ति का उदय, प्रेम का उदय तभी होगा जब तुम इस मन को, जो छोटी-छोटी बातों, आदतों में फँसा रहता है, वहाँ से उसको निकालोगे।

तत् तु विषयत्यागात् सङ्गत्यागात् च । भोजन करो, मगर भोजन के बारे में बैठकर सोचते रहोगे तो भक्ति के लिए कोई समय नहीं होगा। जो प्रेमी होता है उसको किसी चीज़ की परवाह नहीं होती, न भोजन की, न कुछ देखने की, न कुछ सुनने की, न कुछ सूँघने की। वह मस्त रहता है। बहुत अधिक किसी भी विषय-वस्तु में मन को चलाना, हमारी शक्ति को क्षय करने का रास्ता है। इसका मतलब यह नहीं कि उपवास करो, आँख बन्द करके बैठ जाओ चौबीस घन्टे, किसी से बात नहीं करो। यह नहीं, इसको गलत समझे हैं हमलोग।

तत् तु विषयत्यागात् सङ्गत्यागात् च माने जो ज़रूरत है शरीर

को, उसको वह दो, मगर उसके चिन्तन में मत पड़ो। शक्ति का संचय करो। एक इम है, उसमें एक नली है। वह नली यदि खोल देते हो तो इम भरता नहीं है। नली बन्द करो, फिर इम जल्दी भर जाता है। बहुत अधिक जागने पर भी ध्यान नहीं होगा, भक्ति नहीं होगी। बहुत अधिक सोने पर भी भक्ति नहीं होगी, ध्यान नहीं होगा, बहुत अधिक खाने पर भी, और बहुत आलसी होकर बैठने से भी ज्ञान का उदय नहीं हो सकता। युक्ताहार विहारस्य - जितना चाहिए उतना ही करो। मध्यम मार्ग पर चलो। शरीर पर ध्यान दो, मन पर ध्यान दो, भावनाओं पर ध्यान दो और परिसर पर ध्यान दो, और सबसे अधिक ध्यान उस प्रेमास्पद पर दो जो तुम्हारे भीतर है।

अगले सूत्र में कहते हैं -

अव्यावृत्त भजनात् ॥

ऐसा नहीं कि साल भर में एक बार कर लिया, फिर भूल गये। जब परेशानी आती है, तब फिर चले गुरुजी के चित्र के सामने, “गुरुजी, मेरी परेशानियाँ दूर कर दो”। परेशानी दूर होते ही फिर भूल गये। मन्दिर चले गये हनुमान्‌जी की प्रार्थना करने के लिए। कोई समस्या आ गई तो हर मंगलवार जाओ। और समस्या ठीक होते ही फिर मंगलवार कौन सा, शनिवार कौन सा, कुछ नहीं पता। यह नहीं है अव्यावृत्त भजनात्। निरन्तर भजन करना। निरन्तर भजन को हमने सोच लिया कि अखण्ड पाठ करो, अखण्ड भजन। यह अपना रिवाज़ तो है ही। अखण्ड पाठ करते रहते हैं और कराते रहते हैं। रात भर करो। वह भी पूरा भोजन करके, फिर जागरण के लिए बैठ जाते हैं। और किसकी प्रीति के लिए ? भगवती माँ को खुश करने के लिए, वह

खुश हो जायें, उनके लिए कर रहे हैं। खूब भोजन कर लिया, डट कर खाया। अब पेट भरा हुआ है पूरा और भजन गा रहे हैं। यह भजन नहीं हुआ।

अव्यावृत्त भजनात् । निरन्तर भजन करो। निरन्तर उसकी स्मृति बनी रहे। तमिल के एक कवि ने गाया है, “काकिम् सिरही मिले नन्दलाल” - कौए को देखता हूँ तो लगता है नन्दलाल आ गये, कौए के रंग में नन्दलाल दिखते हैं। जहाँ भी देखूँ, तू ही तू, तू ही तू, यह हुआ निरन्तर भजन। उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते इक धारा मन में हो जाए, सब तुम ही हो, और हर आँख में वही दिखे, यह भजन हुआ। इसका मतलब भावुक होकर सबके पाँव पकड़ लेने की बात नहीं है। “अरे भई, भगवान आ गये, पकड़ो”।

समदृष्टि रखना, सम-व्यवहार नहीं। सब में समानता देखो। वृद्धों को जिस तरह का प्रेम देते हो, उस तरह का प्रेम बच्चों को नहीं दे सकते और बच्चों को जैसा प्यार देते हो, उसी तरह का व्यवहार बड़ों से नहीं कर सकते। प्रेम की अभिव्यक्ति अलग-अलग हो सकती है, मगर भाव एक हो। किसी के पैर छूओ, किसी को गले लगाओ, किसी के सिर पर हाथ फेरो। जब तुम पूर्ण होते हो तो सब-कुछ एक साथ कर लेते हो, एक दृष्टि से, एक नज़र से।

अगला सूत्र -

लोकेऽपि भगवद्गुणश्रवणकीर्तनात् ।

संसार में भी उसी का गुण गायें। कोई फिल्मी गीत सुनाए तो

उसमें भी उसी प्रेम, उसी भक्ति को देखना। कोई रेलगाड़ी चलती हुई देखो, तब भी वही भाव उठे। किसी बस को, प्लेन को देखते हो, तब भी वही सिद्धान्त देखो - एक विचार ने इस प्लेन को रचाया। यह सृजनात्मक शक्ति कहाँ की है ? किसकी है ? आज कम्प्यूटर बना तो वह किसकी चेतना से बना है ? किसकी बुद्धि से बना ? जिन्होंने भी बनाया, वे किसके हैं ? इस तरह मूल की खोज और मूल का ही गुणगान। तुम किसी की भी प्रशंसा करोगे, वह उस एक की ही होगी। क्योंकि वह एक ही सब में समाया हुआ है। चाहे तुम खुद की प्रशंसा करो या किसी और की करो, वह जायेगा उस एक को ही। लोकेऽपि भगवद्गुणश्रवणकीर्तनात् । जो भी सुनते हो, उसमें उसको देखो। जो भी गाते हैं, उसी का गुण सब में है। है। तुम्हें अलग से कुछ करना नहीं पड़ेगा। तुम किसी की तारीफ करोगे तो उस तारीफ के पीछे वही है। बस, दृष्टि बदलनी है। जो भी हम करते हैं, वह उन्हीं का श्रवण है, उन्हीं का कीर्तन है।

तुम किसी इमारत को देख कर कहोगे, “वाह, कैसी इमारत है, बहुत बढ़िया, बहुत सुन्दर,” जब कहते हो न, तब भी तुम उसी का गुणगान कर रहे हो। बीच में किसी व्यक्ति का गुणगान करते हो, मगर उस व्यक्ति के पीछे अव्यक्त वही है।

फिर कहते हैं -

**मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद् वा ॥**

मगर मुख्य तौर से दिव्य पुरुष के सान्निध्य से, कृपा से, भक्ति का उदय अनायास हो जाता है। महान व्यक्ति के सामने होने से ही भक्ति, चाहे अनचाहे, होने लगती है। एक कृपा दृष्टि से हो जाती है। यही

मुख्य है, बाकी सब गौण है। यदि कृपा दृष्टि नहीं हो, यदि गुरु की कृपा नहीं होती, तो न तो भजन कर पाओगे, न ही कोई दृष्टि बदलेगी, न जीवन बदलेगा, न तुम संग या विषय का त्याग कर सकोगे। यह सब होता है एक कृपा-दृष्टि से। मुख्यतस्तु - प्रधानता महान आत्माओं की, या महापुरुषों की, या गुरुओं की, एक दृष्टि से, यही मुख्य है।

### महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ॥

ऐसे प्रेम में रंगे हुए व्यक्तियों का संग मिलना दुर्लभ है, मुश्किल है। वह अमोघ है, उसके बराबर कुछ दिखेगा ही नहीं, है ही नहीं, लगेगा भी नहीं। ‘इससे बढ़कर कुछ है ही नहीं’ यह भाव, यह अनुभूति, अपने आप होने लगेगी।

### लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव ॥

वह भी मिलता है उसकी कृपा से। जरा सी कृपा हो, जरा सा भाग्य हो, तभी सत्संग या महत्संग को उपलब्ध कर सकते हैं।

### तस्मिन्स्तज्जने भेदाभावात् ॥

उनमें और परमात्मा में कोई भेद नहीं। महान आत्मा में और परम आत्मा में कोई भेद नहीं, क्योंकि वे उन्हीं के हैं। क्यों भेद नहीं है? क्योंकि उन्होंने जाना है कि मैं कुछ भी नहीं हूँ। जहाँ ‘मैं’ नहीं है वहाँ सब खाली है, वहाँ वही प्रकाश है। एक दीवार के पीछे भी सूरज है और खिड़की के पीछे भी। खिड़की से सूर्य का प्रकाश भीतर आता है, पर दीवार के द्वारा नहीं आ सकता। साधना इसी को कहते हैं जो दीवार को भी खिड़की बना दे। इतना उसको पोंछो, इतना रगड़ो दीवार को, कि वह काँच बन जाये। इसलिए कहते हैं गुरु में और आत्मा में

और भगवान में कोई भेद नहीं है। क्यों ? तुम्हारी जो शुद्ध चेतना है, वही वे हैं। है तो एक। जितना हम सूक्ष्म में जाते हैं, तो “सब एक ही है,” इसका बोध हो जाता है। जैसे शरीर तो सबका अलग-अलग है मगर साँस के स्तर पर सब एक हैं। जो साँस आप ले रहे हैं वही दूसरे भी ले रहे हैं। और उनके भीतर जो साँस गई, वही हमारे भीतर भी जा रही है। यह नहीं कह सकते कि यह हमारी साँस है, यह मेरी हवा है। हवा को हम विभाजित नहीं कर सकते। हवा से भी सूक्ष्म है मन। मन का भी हम विभाजन नहीं कर सकते। मन से सूक्ष्म है आत्मा, चेतना; ‘वह एक ही है’ इसका बोध होता है। इसलिए ईश्वर, गुरु और खुद में कोई भेद नहीं।

गुरु हैं भेद मिटाने के लिए, तुम्हें गुलाम बनाने के लिए नहीं। गुलाम बनाने में ‘तुम’ तो फिर बने ही रहते हो। ‘तुम’ होगा तो गुलाम होगा। इस ‘तुम’ को गुरु एकदम मिटा ही देते हैं। ‘तुम’ होगे ही नहीं वहाँ। और इसी को साधना कहते हैं, इसी को ध्यान कहते हैं, इसी को प्रेम कहते हैं। प्रेम में प्रेमी मिट जाता है, प्रेम ही प्रेम रह जाता है। कहते हैं न - प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाये।

**तदेव साध्यता तदेव साध्यताम् ॥**

उसी पर ध्यान दो, और उसी पर ध्यान दो।

**जय गुरुदेव**

## **संगत का प्रभाव**

## संगत का प्रभाव

प्रेमियों का संग मिलना दुर्लभ है। कामियों का संग मिलना बहुत आसान है। जब कोई कामी व्यक्ति तुम्हारे साथ होता है तो वह तुमको वस्तु बना देता है, तुमको इस्तेमाल करता है। प्रेमी व्यक्ति तुम्हारे साथ होता है तो तुमको भगवान बना देता है। कामी जड़ता लाता है, प्रेमी तुम्हारे चैतन्य को जगाता है। ऐसे प्रेमी व्यक्ति का संग मिलना दुर्लभ है, मगर उसी को चाहना है, उसी को साधना है। और वह वर्णनातीत है, शब्दों से कहा नहीं जा सकता, दिमाग से समझ नहीं सकते।

महत्संग अमोघ है, अगम्य है, माने समझ के बाहर है। समझ के बाहर होने से कभी भ्रम भी पैदा होता है, उलझन भी पैदा होती है। क्योंकि जो भी सम्बन्ध हमने बनाया, वह हमेशा दिमाग से बनाया, सोच-समझ कर सम्बन्ध बनाया, नाप-तौल कर सम्बन्ध बनाया, मगर महत् सम्बन्ध को तुम नाप नहीं सकते हो, तौल नहीं सकते हो, समझ नहीं सकते हो। यह कैसा सम्बन्ध है, यह समझ में नहीं आता। इसमें सभी तर्क, सभी नियम के बाहर हो जाते हैं, ऐसा यह सम्बन्ध है। हमारे सभी दायरों के बाहर हो जाता है यह सम्बन्ध, मगर ऐसे ही सम्बन्ध को साधना है। तभी जीवन में भक्ति का फल्वारा निकलेगा।

तो नारद कहते हैं -

दुष्टसङ्गः सर्वथैव त्याज्यः ॥

दुष्ट संगत का सब तरह से, हर मौके पर, त्याग करो, मतलब उससे दूर हो जाओ। दुःसंग क्या है ? दुष्ट संग क्या है ? जो तुमको अपने से अलग कर दे, दूर कर दे, वही दुष्ट संग है। सुख-सा महसूस कराये शुरू में, मगर अन्त में तुमको दुःख ही दुःख लाये - यही दुष्ट संग है। दुष्ट संग का परिणाम दुःख है, मोह है, अज्ञान है। दुष्ट संग वही है जो सुख के नाम से दुःख देता है, सिर्फ शोर ही शोर है, सत्य नहीं, प्रेम के नाम से हमें मोह में डालने वाला। उससे कोई आनन्द तो नहीं मिलता है मगर उसके बगैर दुःख ज्यादा होने लगता है - यह दुष्ट संग है। समझ रहे हैं ? जिससे कोई मस्ती न मिले, आनन्द न मिले, मगर जिसके बगैर जीवन बहुत दुःखी हो जाए, यह दुष्ट संग है। जैसे शराब। शराब पीने से तो कोई आनन्दित नहीं होता, कोई मस्ती तो नहीं होती, आदमी इतना भाव विभोर नहीं होता, मगर उसके बिना आदमी उदास हो जाता है, दुःखी हो जाता है। यह दुष्ट संग है। सर्वथैव त्याज्यः । हर तरह से इसको छोड़ दो।

काम क्रोध मोह स्मृति भ्रंश बुद्धिनाश सर्वनाश कारणत्वात् ॥

क्यों छोड़ना चाहिए दुष्ट संग ? उसमें एक के बाद एक कामनाओं की उत्पत्ति होने लगती है। फिर वह दुष्ट संग कामना की उत्पत्ति के पीछे क्रोध को उत्पन्न कर देता है। क्रोध के पीछे मोह हो जाता है, माने उसको छोड़ने का मन नहीं करता। फिर स्मृति खो जाती है, अपने स्वरूप की स्मृति विस्मृत हो जाती है। स्मृति भ्रंश - किसी चीज़ को याद नहीं रख

सकते, दिमाग चलता नहीं, ठीक से काम नहीं करता, स्मृति का भ्रंश होता है, फिर बुद्धि का नाश हो जाता है। बुद्धि नाश होने से जीवन में भय उत्पन्न होता है। और भय से क्या ? सर्वनाश। हर तरह से आदमी विनाश की ओर जाता है। शरीर के स्तर पर, मन के स्तर पर, बुद्धि के स्तर पर, भावना के स्तर पर, व्यक्ति जीवन के हर पहलू में कुंठित होता है। तो इसलिए कहते हैं दुःसंग सर्वथैव त्यज्यः - यही कारण है।

### **तरङ्गायिता अपीमे सङ्गात् समुद्रायन्ति।**

शुरू में जैसे एक हल्की सी लहर उठती है, मगर उसके भीतर तुम गहराई में जाने लगो, तो वही लहर समुद्र के जैसे होने लगती है। एक बाढ़ जैसी आ जाती है भीतर। दुःख पहले तो ज़रा सा होता है मगर उस संग में एक-एक कदम आगे चलते जाओ तो उसमें पूरी तरह से धौँस जाओगे। उसमें से निकलना बहुत मुश्किल हो जाता है, बरसों लग जाते हैं उस दुःख से बाहर आने में। कहते हैं, तरङ्गायिता अपीमे संगात्समुद्रायन्ति। शुरू में ऐसा नहीं लगता - खेल सा लगता है। एक तरंग जो चेतना में उठी खेलने को, फिर तुम खेलने जाते हो मगर ढूब जाते हो। संगात्समुद्रायन्ति। संग करने से वही समुद्र के जैसे हो जाता है। कहाँ एक तरंग और कहाँ समुद्र ! परन्तु तरंग उठती है समुद्र में ही। फिर कहते हैं -

### **कस्तरति कस्तरति मायाम् ?**

कौन इस माया को तार सकता है ?

यः सङ्गान् त्यजति

यो महानुभावं सेवते, निर्ममो भवति ॥

हमारे भीतर मैं, मैं, मैं कुछ हूँ, मैं कुछ हूँ। यह ‘मैं’ ही दुःख का कारण हुआ न। इस ‘मैं’ को पिघलने देना, निर्मम हो जाना, ‘मैं तो हूँ ही नहीं।’ इस ‘मैं’ को कैसे पिघलाओगे ? महानुभावम् महान आत्मा के पास रहने से। महान पुरुषों के संग रहने से ही यह ‘मैं, मैं’ गल जाता है भीतर से और मन के दुःख का क्षय हो जाता है। दुःख का क्षय होते ही निर्ममो भवति - तुम निर्ममता में आ जाते हो।

यो विविक्तस्थानं सेवते, यो लोक बन्धमुन्मूलयति ।

यो निश्चैगुण्यो भवति, यो योगक्षेमं त्यजति ॥

फिर चार अवस्था का वर्णन करते हैं। जो अपने भीतर उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ और कुछ नहीं है। विविक्त स्थानं सेवते - मन में जो कुछ भी भरा हुआ है, सब खाली कर दो, तब भी तुम भक्ति को पा लोगे, तर जाओगे। खाली हो जाओ। विविक्त स्थानं सेवते मतलब खाली हो जाओ। इसको लोगों ने गलत समझ लिया - जहाँ कोई नहीं, वहाँ जा कर बैठ जाओ। कमरे में जाकर घुस जाओ। हाँ, वहाँ आदमी तो कोई नहीं, मगर मन में तो बहुत लोग भरे हुए हैं। मन से औरों को हटाओ - खाली हो जाओ। विविक्त स्थानम् उस एक में हो जाओ। एकमय हो जाओ।

यो लोक बन्धमुन्मूलयति । दूसरे आदमी हमारे बारे में क्या सोचते हैं, यह सोचना जो बन्द कर देते हैं, और दुनिया के बन्धन छोड़ने वाले जो होते हैं, वे भी तर जाते हैं। सबसे बड़ा बन्धन है लोक

बन्धन। लोग क्या सोचेंगे हमारे बारे में। जिनको जो सोचना है सोचने दो। मान-सम्मान की अपेक्षा, दूसरे हमको इज्जत दें, मान दें, ऐसा करें, वैसा कहें। भई देखो, इन खोपड़ियों में कितने विचार उठते हैं ? एक-एक सेकेण्ड में कितने विचार उठते हैं, उठते हैं कि नहीं ? और कितने करोड़ खोपड़ियाँ हैं हिन्दुस्तान में ? सब में अलग-अलग भाषाओं में विचार उठते हैं और हर क्षण उठते रहते हैं। इसका कोई हिसाब है? दुनिया में करोड़ों लोग हैं, अरबों लोगों के दिमाग में विचार उठते हैं और हर घड़ी उठते हैं, हर क्षण उठते रहते हैं। अब उन विचारों को बाँधने की कोशिश तुम करते हो। यह भूल है, यह माया है। तो लोकबन्धन को छोड़ना है, चाहे लोग कुछ भी सोचें, समझें। खाली हो जाओ। बहुत सारा काम जो हम करते हैं, दूसरे क्या सोचेंगे, ऐसा सोचकर करते हैं।

यो निखैगुण्यो भवति, जिनकी चेतना शान्त हो जाती है, ध्यानस्थ हो जाती है, तीनों गुणों के परे हो जाती है, ..... निखैगुण मतलब ध्यान।

**योगक्षेमं त्यजति** - जो नहीं मिला है, वह मिल जाये, इस तरह की आकांक्षा, और जो मिला हुआ है, उसको पकड़कर रखने की आकांक्षा - जो इन दोनों को भी छोड़ते हैं, वे व्यक्ति भी तर जाते हैं - **योगक्षेमम्**। यह अलग-अलग व्यक्तियों के लिए बताया है कि कोई ऐसा करते हैं, कोई वैसा करते हैं - वे सब तर जाते हैं।

**यः कर्मफलं त्यजति, कर्माणि सञ्च्यस्यति,  
ततो निर्दद्वो भवति॥**

यह और एक आगे का कदम। तुम ध्यानी तो बने, मगर कर्म का फल त्यागने के काबिल हुए कि नहीं, यह ज़रा देखो। ध्याना कर्म फलं त्यागः। ध्यान से भी बढ़िया क्या है, पता है ? कर्म के फल को त्याग देना। हर क्षण कर्म का फल है। हर क्षण की जो अनुभूति है, अनुभव है, यह कर्म का फल है। अच्छा कर्म किया, अच्छा फल भोग रहे हो, बुरा कर्म किया, बुरा फल भोगते हो। हर क्षण में जो कुछ भी आप अनुभव कर रहे हो, यह सब कर्म का फल है। हर क्षण को समर्पण करते चले जाओ, तो कर्म-फल को तुमने त्याग दिया। ध्यान से भी उत्तम है कर्म-फल को त्याग देना। कर्म-फल को त्यागते चले जाओ और कर्म को भी छोड़ो, कर्माणि सञ्च्यस्यति, ततो निर्द्वन्द्वो भवति। तब तुम निर्द्वन्द्व हो जाओगे, द्वन्द्व के परे चले जाओगे, यह भी ध्यान की ही एक प्रक्रिया है, वर्तमान में रहने की प्रक्रिया। जो कर्म-फल वर्तमान में मिलता है, यह भूत का है। जब भूत को ही छोड़ा, भविष्य को छोड़ा, वर्तमान में रहा क्या ? कर्माणि सञ्च्यस्यति।

यह इतना आसान नहीं है। कर्म-सन्यास देह-धारियों के लिए आसान नहीं है। जब तक शरीर रहता है, कुछ न कुछ कर्म करना ही पड़ता है और हर कर्म में कुछ दोष होता ही है। तो इसलिए कर्मफल को त्यागो, कर्माणि सञ्च्यस्यति माने कर्म में भी ढंग से सिद्ध हो जाओ। केन्द्रित होकर कर्म करना कर्मसन्यास है। हम समझते हैं कर्मसन्यास का अर्थ है कर्म को छोड़ देना - यह नहीं है। कर्तापन को छोड़ देना कर्मसन्यास है। तब निर्द्वन्द्व हो जाओगे। वे ही निर्द्वन्द्व हो सकते हैं, यो वेदानपि सञ्च्यस्यति, केवलभविच्छिन्नानुरागम् लभते।

जो वेद को भी छोड़ देते हैं, ज्ञान को भी छोड़ देते हैं, उनको परम प्रेम की प्राप्ति हो जाती है। क्योंकि ज्ञान ही आगे जाकर बन्धन का कारण हो जाता है। ज्ञान तुम्हें अपने भोलेपन से दूर कर देता है। “मैं जानता हूँ” भाव तुमको अपनी मुग्ध-अवस्था में रहने में बाधा डालता है। ऐसे रहो जैसे तुम कुछ नहीं जानते। “मैं कुछ नहीं जानता”, यह भोलापन हुआ। भोलापन होते ही तुम ही भोलेनाथ हो जाते हो। “भोले भाव मिले रघुराई”, ये आगे की बात है। वेद का सन्यास होना, ज्ञान का सन्यास होना, छोड़ना, तभी सम्भव है जब मैल धुल जाये। मैल हटाने के लिए साबुन लगाते हैं। साबुन को तब तक नहीं धोना है जब तक मैल को वह साबुन हटाता नहीं। और मैल निकलने पर उसके साथ साबुन को भी निकाल दो। ज्ञान वही है। इसीलिए ज्ञान को कहा है - न हि ज्ञाने न सदृष्टं पवित्रमिह विध्यते

ज्ञान के समान पवित्र करने वाली वस्तु कुछ और नहीं है।

केवलमविच्छिन्नानुरागम् लभते - ऐसी भक्ति, ऐसा प्रेम, ऐसा अनुराग फिर शरीर के कण-कण से, जीवन के क्षण-क्षण में उपजता है। उसका प्रवाह, उसकी धारा निरन्तर चलेगी। तुम प्रेम की पूँजी हो जाओ।

**स तरति स तरति, स लोकांस्तारयति ॥**

वही तर सकता है, वही तरता है, वही औरों को तार सकता है। जो खुद प्रेम में नहीं है, वह दूसरों को कैसे प्रेम बाँट सकता है ? जो प्रेममय हो गया है, वह किसी को भी, कहीं से भी उठाकर आगे ले जायेगा। हर तरह के दुःख को वह दूर कर देगा। वही कर सकता है।

सद्गुरु के आस-पास, ज्ञानी के आस-पास पाँच लक्षण घटते हैं :

- |                |  |
|----------------|--|
| ज्ञान रक्षा    | - ज्ञान की रक्षा होती है।                        |
| दुःख क्षय      | - दुःख का क्षय होता है, दुःख क्षीण होने लगता है। |
| सुख आविभाव     | - सुख अपने आप उपजता है।                          |
| सर्व समर्वर्धन | - सब तरह की प्रतिभाएँ फलपने लगती हैं।            |
| समृद्धि        | - सब तरह की समृद्धियाँ होती हैं।                 |

अक्सर यह प्रश्न उठता है न, यह समस्या है - गुरु कौन हैं, कैसे हैं, कैसे जानें, कैसे पहचानें ? तो ये पाँच लक्षण देखो, घट रहे हैं कि नहीं। वे ही तर सकते हैं और वे ही तार सकते हैं।

प्रश्न : कर्म के फल को कैसे त्याग सकते हैं ?

श्रीश्री : बस, छोड़ दो। अपने आप छूट ही जाता है। इसको चेष्टा करके छोड़ने की ज़रूरत नहीं है। समर्पित होने से छूट जाता है।

प्रश्न : मोह अपने परिवार से भी होता है, और प्रेम में भी होता है?

श्रीश्री : प्रेम और मोह में फर्क है। प्रेम तो रखो, मगर मोह से निकलो। विशालता में आ जाओ, तो यह सब निकल जाता है। सीमित दृष्टिकोण ही इसका कारण है, बड़े रूप से देखो। जैसे एक साधक के लिए योग तपस्या है; आसन करो, प्राणायाम करो, ध्यान करो, इधर-उधर भागनेवाले मन को बाँध कर ले आओ, यह तपस्या हुई। वैसे ही परिपक्व साधक, माने सिद्ध के लिए व्यवहार तपस्या है, भोग तपस्या है। एक तृप्त व्यक्ति के लिए भोजन करना भी तपस्या है, बातचीत करना भी तपस्या है।

एक को योग तपस्या, दूसरे को भोग तपस्या।

और तपस्या करना ज़रूरी है। तपस्या से सन्तुलन बना रहता है। तपस्या से फिर अशुद्धि का क्षय होता है, अशुद्धि दूर होती है। तो इसलिए कृष्ण कहते हैं, “यज्ञदानतपः कर्म न त्यज्यमिति चापरे।” यज्ञ, दान और तप, ये तीनों कभी छोड़ने लायक हैं ही नहीं। किसी हालत में भी नहीं छोड़ना चाहिए उनको। यज्ञ माने क्या ? सत्कार। सबका सम्मान भाव। तुम भगवान हो ही गये, तुमने जान भी लिया कि तुम ही भगवान हो, तब भी सबका सम्मान करो, अकड़ कर नहीं चलो। ऐसा हो ही नहीं सकता, मगर तब भी सम्मान करना, एक मर्यादा को बनाये रखना ज़रूरी है। और “संगति करण” सबको साथ लेकर चलना है। और दान - माने कुछ न कुछ आदान-प्रदान, लेना-देना, कुछ न कुछ चलते रहना चाहिए। “मुझे क्या पड़ी है, मैं किसी से क्यों लूँ”? ऐसा नहीं। “अरे, तेरी मुझे बहुत ज़रूरत है, तेरे बिना मैं कैसे रहूँ”? यह भाव होना चाहिए। तभी तो आदान-प्रदान होगा, नहीं तो होगा कैसे ? और तप की भी आवश्यकता है। इन तीनों चीजों की जीवन में हमेशा ज़रूरत है।

जय गुरुदेव

# **प्रेम कहाँ और किसामें**

## प्रेम कहाँ और किसमें

अक्सर हमको यह महसूस होता है कि हम कुछ कहना चाहते हैं मगर कह नहीं पाते, शब्द मिलते ही नहीं। हम भाव-विभोर हो उठते हैं और इन भावनाओं को शब्दों में बाँधने की चेष्टा करते हैं। और हम हमेशा असफल ही रहे हैं। जिस जीवन में ज़रा सी भी गहराई आती है, या मिली है, वह ज़रूर यह महसूस करेगा कि शब्दों के परे कुछ है। “यह जो मैं अनुभव कर रहा हूँ, यह शब्दों से परे है”। शब्दों में बाँध कर हम बता नहीं सकते। हम जो भी महसूस करते हैं, यदि शब्दों में बता सकें, तो हमारा जीवन बहुत ऊपरी स्तर पर रह जाता है - उसमें कोई गहराई नहीं, कोई रस नहीं। वह जीवन ही नहीं।

अगला सूत्र नारद कहते हैं -

अनिर्वचनीयं प्रेमरूपम् ॥

इसका निर्वाचन नहीं, विवेचन नहीं हो सकता। प्रेम को हम वाणी से अभिव्यक्त नहीं कर सकते। इसलिए गले लगाते हैं, झुक जाते हैं पैरों में, आँसू बहा देते हैं, गल जाते हैं, फूल चढ़ाते हैं और तरह-तरह की चेष्टा करते हैं उस भाव को व्यक्त करने की। हज़ार शब्द का प्रयोग एक चेष्टा के बराबर है और हज़ार चेष्टा एक दृष्टि के बराबर, एक नज़र के बराबर। न वचनों से, न किसी चेष्टा से, न क्रिया-कलाप से,

न उपचारों से, हम प्रेम को अभिव्यक्त कर ही नहीं सकते हैं - पूर्ण रूप से। यदि प्रेम है भीतर, तो वह झलकता है। हर कदम पर, हर चेष्टा में, डर वाणी में, उसकी झलक मिल ही जाती है। मगर एक पूर्ण रूप से तुम इसका निर्वाचन करना चाहो, तो वह असम्भव है। कोई नाटक भी कर सकते हैं। सिनेमा में कितने अभिनेता नाटक करते हैं प्रेम का, सचमुच में प्रेम नहीं होता। भीतर से वह भाव उठता ही नहीं, मगर दिखाते हैं, है न ? अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् हजारों शब्दों के बराबर एक चेष्टा। हजार बार तुम किसी से कहो कि हमें प्रेम है, मगर एक छोटा सा काम कर दो, वह उससे बड़ा है। एक आलिंगन, एक दिल से प्रणाम, एक फूल को चढ़ाना, समर्पण करना, दो बूँद आँसू गिराना, ये शब्दों से अधिक मूल्यवान हैं। और हजार चेष्टा से भी शक्तिशाली एक मौन की घड़ी, एक क्षण हम पूर्ण मौन से दृष्टि ढायें। मौन माने क्या ? मन को इकट्ठा करना। बिखरे हुए मन को हर जगह से, हर तरह से लाकर एक जगह पर समेट लेना, यह मौन है। जब तुम सिमट जाते हो चारों और से, तब तुम ही प्रेम हो जाते हो। प्रेम कोई भावना नहीं, कोई भावुकता नहीं है, कोई वस्तु नहीं है, कोई अलग आरोप नहीं है तुम पर जिसको किया जा सके। प्रेम तुम्हारा स्वभाव है। और जो तुम्हारा स्वभाव है उसको बताना बहुत मुश्किल है क्योंकि हर भाषा और हर वचन सीखी हुई है, बाहर से लाई हुई है। किसी बच्चे को यदि तुम जंगल में भी छोड़ दोगे तो वह भाषा के बिना बड़ा हो जायेगा, मगर उसमें प्रेम होगा ही। प्रेम सीखने-सिखाने की बात नहीं है, कृत्य नहीं है। जो तुम हो, वही प्रेम है। और तुम हमेशा अनिर्वचनीय हो। इसलिए कहते हैं अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् ।

अगला सूत्र -

### मूकास्वादनवत् ॥

जैसे, उदाहरण देते हैं, गूँगे को गुड़ की मिठाई। उसके चेहरे को देखते ही तुम पहचान लोगे कि यह मस्ती में है, इसको गुड़ पसन्द आया। प्रेम शब्दों में नहीं है। जीवन के प्रत्येक क्षण में उसका प्रस्फुरण होता है, उसकी अभिव्यक्ति होती है। तुम्हारी हर चेष्टा में तुम उसकी झलक पाते हो। फिर भी अछूता रह जाता है वह तुम्हारी चेष्टाओं से, वचनों से और अभिव्यक्ति से। मूकास्वादनवत् - जो जानता है वही जानता है, जो नहीं जानते हैं वे जान ही नहीं सकते। जैसे बहरे के सामने बाँसुरी तुम बजाओगे, उसको कैसे बताओगे कि बाँसुरी क्या है?

### प्रकाशते क्वापि पात्रे ॥

वह प्रेम, ऐसा शुद्ध प्रेम, परा प्रेम, इधर उधर, कहीं-कहीं प्रकाश में आता हुआ दिखाई देता है। कहते हैं ठीक जगह पर उसका प्रकाश होता है; वह भक्ति प्रकाशित होती है, कहीं भी हो सकती है।

### गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानं

### अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरं अनुभवरूपम् ॥

उसमें न कोई गुण है, न कोई कामना है। अकसर प्रेम किसी गुण से सम्बन्धित होता है - रजो गुणी प्रेम, तमो गुणी प्रेम, सतो गुणी प्रेम। मगर भक्ति उसके परे है। रजोगुणी प्रेम माने उस गुण से तुम आकांक्षा करते हो। “मैंने प्यार किया तुमको, तुम क्या दोगे मुझको”? प्यार के ऊपर सवार हो जाना - यह रजो गुणी प्रेम है। आतंकवादियों का प्रेम

तमो गुणी प्रेम है। कोई आंतकवादी हो ही नहीं सकता यदि उसके मन में प्रेम नहीं होता। वह आतंकवादी इसलिए बना है क्योंकि किसी उद्देश्य के साथ उसका इतना अधिक प्रेम है। किसी लक्ष्य के प्रति उसका प्रेम अत्यधिक है, तो वह आतंकवादी बन गया। जान देने के लिए तैयार हो गया, जान लेने के लिए तैयार हो गया। यह प्रेम से ही तो होता है। प्रेम नहीं होता तो कोई आतंकवादी हो भी नहीं सकता। है कि नहीं ? ज़रा सोचो तो, एक ध्येय पर उसका प्रेम इतना गहरा उतर गया, तो वह जान देने के लिए तैयार हो जाता है। यह तमो गुणी का प्रेम है। सतोगुणी प्रेम - जो सत्य के प्रति, धर्म के प्रति, समाज के कल्याण के प्रति होता है।

ये तीनों तरह के गुण से परे जो प्रेम है, भक्ति जो है, यह तुम्हारा निज स्वभाव है, स्वरूप है - गुण रहितं कामना रहितं प्रतिक्षणवर्धमानं अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरं अनुभवरूपम् ।

यहाँ नारद ने ध्यान की बात कही।

ध्यान में जो प्रेम उपजता है तुम्हारे भीतर, उसकी कोई तुलना नहीं, उसका कोई कारण नहीं, उसका कोई उद्देश्य नहीं है। उसका कोई लक्ष्य नहीं है क्योंकि वह किसी कृत्य के रूप में परिणत नहीं हो रहा। उसकी कोई कामना नहीं और प्रति क्षण - हर क्षण, हर पल उसका प्रस्फुरण हो रहा है, फव्वारे फूट रहे हैं भीतर से। प्रतीक्षणवर्धमानम् - ज़रा सा प्रेम लगा, वह प्रेम बढ़ता ही चला गया। अक्सर हमको एकदम प्यार होता है, फिर घटने लगता है धीरे-धीरे, फिर कुछ समय के बाद वह प्यार परिवर्तित होकर द्वेष में उतर आता है। आप ज़रा घूम कर तो देखो, जब आप छोटे बच्चे थे, आपका प्यार कहाँ था?

खिलौनों में, और अपने माँ के प्रति, पिता के प्रति। माता-पिता का प्रेम जब आप बड़े हुए, पति-पत्नी के रूप में आ गया, फिर माता पिता का प्रेम ज़रा पीछे हट गया। जब आपके बच्चे हो गये, फिर तो भूल ही जाओ, और किसी को तो प्रेम करते ही नहीं। करते तो हो, उतना नहीं करते। अब आपका पूरा ध्यान-लग्न अपने बच्चों पर चला गया। बच्चों को जितना आप प्यार करते हो, उतना अपने माता-पिता को अब नहीं करते। अब देखो, आपके बच्चे आपसे कितना प्यार करते हैं, कितना आपके साथ लगाव है उनका। ये भी आगे बढ़े होंगे, इनके भी बच्चे होंगे, तब इनकी दृष्टि आपसे हट जायेगी, तब आप हाय-हाय करोगे। क्योंकि तुमने कभी अपनी दृष्टि कहीं और लगाई नहीं, खुद पर लगाई नहीं। शुरू में तो माता-पिता, दोस्तों पर लगी, फिर बाद में अपने बच्चों पर लग गई, अब खुद में आप वंचित रह गये, अपने ऊपर कभी दृष्टि गई नहीं। क्योंकि उस प्रेम की गहराई में कभी उतरे ही नहीं। प्रेम की गहराई में प्रतिक्षणवर्धमानं अविच्छिन्नं।

तब हम पाते हैं कि वह जो भी प्रेम हमने अपने माता-पिता से किया है, अभी बच्चों से कर रहे हैं, वह एक ही है। किसी से भी करते हैं, ‘वह मेरा स्वभाव है’। अविच्छिन्नम् उसमें कभी क्षति नहीं हुई। यस्तु में लग गया प्रेम तो लोभ हो गया। व्यक्ति में लग गया प्रेम तो मोह हो गया मगर प्रेम तो रहा। किसी न किसी तरह प्रेम की धारा बहती चली जा रही है और वह अविच्छिन्न है, कभी टूटी नहीं है, जैसे गंगा। यह पूरी सृष्टि प्रेम से ही बनी है। हवा को यदि पृथ्वी से प्रेम न होता तो पृथ्वी के साथ क्यों घूमती ? यदि पृथ्वी को छोड़कर हवा चली जाये दो-पाँच किलोमीटर दूर, तब एक ही क्षण में सब-कुछ खत्म हो जायेगा।

पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण जो है वह ही प्रेम है - अपनी ओर खींचना। पृथ्वी सब-कुछ को अपनी ओर खींचती है, क्यों ? उसको सब चीज़ से प्यार है - पत्ते से, फूल से भी, काँटे से भी, डाली से भी। पृथ्वी में प्रेम, जल में प्रेम, वायु में प्रेम, आकाश में तो प्रेम भरा हुआ है। सूरज में प्रेम न होता तो सूरज की किरण इतनी दूर से यहाँ तक आती कैसे ? आप यहाँ से किसी तारे को देखते हो, उस तारे से निकली हुई रोशनी, कहते हैं कभी चार साल पहले निकली हुई रोशनी अब दिखाई देती है, वह रोशनी आकर हमारी आँखों के भीतर प्रवेश करती है, मगर हम उस तारे से जुड़े हुए हैं; अरबों मील दूर जो तारे हैं, उनकी रोशनी देखते ही हमारा-उनका सम्बन्ध जुड़ जाता है। इस तरह से इस सृष्टि में सब सम्बन्धित हैं। उस सम्बन्ध की कड़ी के कारण प्रेम है। या यह कहो वह सम्बन्ध ही प्रेम है। पहले समझना स्वभाव ही प्रेम है। और दूसरी तरफ से समझो कि सम्बन्ध, किसी भी प्रकार का सम्बन्ध क्यों न हो, किसी से नफरत भी होती है तो भी वह प्रेम ही है, प्रेम का ही एक विकृत स्वरूप है - किसी भी तरह का सम्बन्ध प्रेम है।

**सूक्ष्मतरं अनुभव रूपम्** - भक्ति जो है परा प्रेम है, शुद्ध प्रेम है, वह भीतर अनुभव करने की चीज़ है। हर अनुभव इस सूक्ष्म प्रेम के द्वारा ही है। अनुभव माने क्या ? अनुभवी को जोड़ना। अनुभूति और अनुभवी का अनुभव के द्वारा अनुभूत रहना, अनुभव के द्वारा जोड़ देना। और वह जोड़ क्या है ? जैसे दृश्य, दृष्टा और दर्शन - कोई भी अनुभव प्रेम का ही रूप है और प्रेम का अनुभव है। ईर्ष्या यदि होती हो तो उसके भीतर भी प्रेम है। मन भी प्रेम का ही विकृत रूप है, मात्सर्य, क्रोध भी।

तत् प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव शृणोति,  
तदेवभाषयति, तदेव चिन्तयति ॥

उस अनुभव को, इस अनुभव को, प्राप्त करके व्यक्ति धन्य होता है। उसकी वाणी में हमेशा प्रेम झ़लकता है। जो कुछ भी बोलता है, उसका ही विचार, उसका ही चिन्तन। उसके सिवाय कुछ दिखाई ही नहीं देता। प्रेम ही सार है सृष्टि का। निःसार बात किसी को पसन्द नहीं। एक बार रस कोई चख ले फिर नीरसता में उतरना किसी के लिए बहुत कठिन है, मुश्किल है। एक बार रस का अनुभव करने के बाद व्यक्ति नीरसता में जा नहीं पाता।

ज्ञान की झ़लक पाने के बाद आदमी के लिए अज्ञान में उतरना असम्भव है, मुश्किल लगता है। ज्ञान की बातें करने या सुनने की तुम्हें आदत पड़ जाये, फिर और व्यक्ति आकर आलतू-फालतू बातें करें, तुम्हारा जी मचल जाता है, पसन्द आता ही नहीं, भागने को दिल करता है। क्यों ? अरुचिकर हो जाता है; उसमें कुछ रखा ही नहीं। आज क्या सब्जी बनाई, क्या खाना खाया, ये कपड़े किस दूकान से खरीदे, कौन सा सिनेमा कहाँ चल रहा है ? ऐसी छोटी-छोटी बातें बचकानी लगती हैं, असार लगती हैं।

प्रेमी व्यक्ति उसी की बातें करेगा जो उसे भाये। एक ही झ़लक भक्ति की मिल जाये, फिर वह भक्ति की ही चर्चा करता है, उस सौन्दर्य की ही बातें करता है। उस सम्बन्ध के बारे में जानना चाहता है। चौंक जाता है बिल्कुल - यह क्या सृष्टि है ? कितनी सुन्दर है, कितनी अमोघ। जिसने भी रची है, वह कितना और सुन्दर होगा और हमसे कितना प्यार करता है। इस तरह उसी की चर्चा होती है।

## गौणी त्रिधा, गुणभेदाद् आर्तादिभेदाद् वा ॥

साधारण प्रेम, माने गौण प्रेम, तीन तरह का है - सात्त्विक, राजसिक और तामसिक । आर्तादिभेदाद् वा । आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी - चार प्रकार का कहते हैं ।

आर्त - दुःखी व्यक्ति भी जब चाहता है तो उसमें भी प्रेम है । आदमी दुःखी इसीलिए है क्योंकि वह प्रेम में दुःखी है । किसी अप्राप्य वस्तु के प्रति वह प्रेम में पड़ गया, तो दुःखी हो गया । मजनू दुःखी हो गया क्योंकि वह लैला के प्रेम में पड़ गया, वह मिली नहीं । हर दुःख यही सूचना देता है कि तुम किसी अप्राप्य वस्तु के प्रेम में पड़ गये हो ।

यह आर्त प्रेम है । अर्थार्थी - जैसे यह भी हो सकता है न, जब वृद्ध अवस्था आई तो शरीर कम काम करने लग गया । पहले जैसा नहीं रहा । बैठने से घुटनों में दर्द होता है - ऐसे दर्द, वैसे दर्द होता ही रहता है । शरीर का दर्द है, कभी न कभी यह तो छूटेगा ही न? तब इस शरीर को लेकर हम दुःखी हो जायें । शरीर में तो दर्द है । और मन को इसके बारे में सोच-सोचकर और दर्द हो जाये । लेकिन दर्द जो है वह शरीर और मन के संयोग में है । जब आप सोते हो तब दर्द नहीं होता । जागते हो तब दर्द होता है, और जब खाली बैठते हो, तब और ज्यादा दर्द होता है । आप बैठे हैं तीन घंटे सिनेमा देख रहे हैं, टी.वी., तब नहीं दर्द होता । आप खाली बैठे हैं, २० मिनट ध्यान के लिए बैठते हैं, तब दर्द होता है । क्यों? इस मन को टिकाने के लिए कोई और आलम्बन नहीं दिया आपने । अब मन को थोड़ा शरीर के साथ रखने लगे तब फिर दर्द का अनुभव करने लगे । दर्द मतलब क्या? शरीर आपका ध्यान अपनी

ओर आकर्षित कर रहा है। आपने शरीर को अलग कर दिया, ध्यान नहीं दिया, गौर नहीं किया। तब शरीर कहता है, “मैं भी हूँ - मेरी तरफ देखो ज़रा,” तब आपको इधर-उधर दर्द होने लगता है। जैसे बच्चे करते हैं न घर पर - मेहमान आ जाते हैं, आप बात-चीत करना चाहते हैं, बच्चे चिल्ला-चिल्लाकर कुछ-कुछ बातें करते हैं, दिखाते हैं “मैं भी हूँ।” इसी तरह शरीर तुम्हें सूचना देता है “मैं भी हूँ। मैं साथ हूँ, तुमने मुझे गौर नहीं किया”। आर्त का भी प्रेम है।

अर्थार्थी - किसी आकांक्षा में चल पड़ते हैं कुछ पाने के लिए, यह चाहिए, वह चाहिए, इकट्ठा करते हैं। अर्थ के पीछे जो लोग दौड़ते हैं, वह भी प्रेम के कारण है। यह जो सृष्टि है, समाज है, इसके पीछे दौड़ना अर्थार्थी हुए।

और अपने प्रति खोज करना जिज्ञासु हुए। “मैं कौन हूँ ? क्या हूँ?” जानने की इच्छा से जो चलते हैं, वह प्रेम जिज्ञासु का प्रेम है। जिज्ञासा भी प्रेम के बिना हो नहीं सकती। जिज्ञासा माने क्या ? जानने की आकांक्षा। जानने का प्रेम। ज्ञान के प्रति जुड़े हुए प्रेम को जिज्ञासा कहते हैं।

फिर ज्ञानी का प्रेम। जो ज्ञान चुके हैं, उनका प्रेम। ज्ञानी तो प्रेमी होगा ही, और कोई चारा ही नहीं। ज्ञान विस्मय पैदा कर देता है तुम्हारे भीतर, वह विस्मय ही प्रेम में परिभूत हो जाता है। आप चौंक जाते हो, “ओह! क्या ऐसा है?” यह सृष्टि अनन्त है, इसका कोई आर-पार नहीं है, यह अनन्त है, पूर्ण है, सुन्दर है, सत्य है। इस सृष्टि को देखते-देखते - यहाँ सृष्टि माने आत्मा को भी कहा है, जो सृष्टिकर्ता हैं - जितना गहराई में उतरो तुम अपने में, और गहराई मिलती है, इसका कोई तल

भी नहीं। यह चेतना, यह मन, यह बुद्धि, इस पर ज़रा ध्यान दो। इससे बड़ा कोई मनोरंजन दुनिया में है ही नहीं। बहुत बड़ा मनोरंजन है। खुद का मन नहीं देख पाओगे तो औरों का मन तो देखो ज़रा। एक घड़ी कोई हँस रहे हैं, दूसरी घड़ी एकदम मूड बदल जाता है, चिल्लाने लगते हैं, गुस्सा करते हैं। वही व्यक्ति, कितने तरह के भाव में बह जाता है, थोड़े समय में। मन को समझना अति कठिन है। मनोवैज्ञानिक बहुत चेष्टा कर-कर के थक गये। और हर बार नये सिद्धान्त लाते हैं। दस साल पुरानी, जो भी किताबें बनी हैं, सब बेकार हो गई ....। गौणी त्रिधा, गुण भेदाद् आर्तादिभेदाद् वा - सात्त्विक, राजसिक, तामसिक और आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी के प्रेम से वह प्रेम अभिव्यक्त होता है।

**उत्तरमादुत्तरमात् पूर्वपूर्वा श्रेयाच्य भवति ॥**

एक से दूसरा बेहतर है - तमोगुणी प्रेम से रजोगुणी प्रेम बेहतर है, रजोगुणी प्रेम से सतोगुणी प्रेम बेहतर है - इसी तरह आर्त के प्रेम से अर्थार्थी का प्रेम बेहतर है। अर्थार्थी के प्रेम से जिज्ञासु का प्रेम, जिज्ञासु के प्रेम से ज्ञानी का प्रेम बेहतर है।

**अन्यरमात् सौलभ्यं भक्तौ ॥**

अक्सर लोग आकर पूछते हैं, गुरुजी ऐसा कोई सरल उपाय बता दीजिए, कुछ नहीं करना पड़े, बहुत जल्दी से, shortcut, सरल उपाय बताइये। यह मत कहिए ध्यान करो, पूजा, प्राणायाम - ये सब में समय तो लगता है, दस मिनट तो लगता है, सुदर्शन क्रिया भी करना होगा, ध्यान भी करना होगा। और जल्दी बता दीजिए - आजकल जमाना

ऐसा नहीं। तुरन्त हो जाये। किसी तरह आप ऐसा आशीर्वाद दे दो, हमारा मन अभी टिक जाये। नहीं। प्रेम कोई कृत्य नहीं, भक्ति कोई कृत्य नहीं, एक आत्मीयता हमें लानी है। और किसी को अपना कब मानोगे? दस साल के बाद, बीस साल के बाद या पन्द्रह साल के बाद? या अभी? आत्मीयता कोई और तुम्हारे भीतर नहीं ला सकता, तुम्हीं को, अपनी तरफ से, आत्मीयता लानी पड़ेगी। कहते हैं, अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ। भक्ति जो है और सभी प्रक्रियाओं से अति सरल है, सुलभ है और बहुत आसान है। जिनके भीतर एक अपनत्व उदय हो जाता है, उनके लिए सब-कुछ सरल हो जाता है - ज्ञान भी सरल हो जाता है, योग भी सरल हो जाता है। देखिए न, यदि घर पर कोई नई गाड़ी आ जाती है तो वह अपनी लगती है, लगता है उसको खोलो, देखो। उसके बारे में आसक्ति बढ़ती है और हम उसके बारे में सब जान लेते हैं। यदि नई मशीन लाते हैं तो पूरा manual पढ़ लेते हैं। यदि mechanic shop में जायें, वहाँ छोटे-छोटे बच्चे भी थोड़ा बहुत काम करते हैं। उनको एक engineer से भी अधिक मालूम है गाड़ी के बारे में। एक पढ़ा-लिखा mechanical engineer भी गाड़ी के बारे में इतना नहीं जानता, मगर cleaner का बच्चा जो वहाँ काम करता है, वह जानता है, वह ठीक-ठाक कर लेता है। क्यों? उसमें रुचि है। अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ।

### प्रमाणान्तरस्यानपेक्षत्वात् ख्ययं प्रमाणत्वात्।

उसका प्रमाण क्या है? हम सचमुच में भक्त हैं इसका प्रमाण क्या है? सचमुच में मेरे भीतर प्रेम का उदय हो गया है, इसका प्रमाण क्या है? सिद्ध करें? कहते हैं, सिद्ध नहीं कर सकते। कोई और समझे

तुम नाटक कर रहे हो, समझने दो। वह समझ की भूल है। यदि और से वे देखेंगे तो उनकी समझ में आ जायेगा कि इस भाव में नाटक नहीं है। यह तुम्हारा निज रूप है। तुम्हारे मन में यदि सचमुच प्रेम है, तुम ऐसे औपचारिक ढंग से नहीं बोल रहे हो, तुम सिद्ध करने में मत जाओ, क्योंकि तुम सिद्ध कर ही नहीं सकते हो। अपने बारे में बातचीत करना, समझाने जाना, “मैं ऐसे नहीं बोला, मैंने ऐसे बोला” - यह जो उलझन को सुलझाने जाते हैं लोग, और ज्यादा उलझन में पड़ जाते हैं। बातचीत से कभी उलझन सुलझती नहीं है। तुम समझाओ, तुम्हारे विस्तार रूप से समझाने में कोई विश्वास नहीं करता, कोई समझता नहीं, अभिव्यक्ति नहीं होती। आँख जिनमें है वे देख लेंगे और तुम्हे संशय होगा ही नहीं क्योंकि तुम्हें और कोई प्रमाण नहीं चाहिए। पूरी दुनिया यदि कहे कि तुम्हारे भीतर प्रेम नहीं हैं, तुम बेकार आदमी हो, किर भी तुम कहोगे, “नहीं, मैं प्रेमी हूँ।”

दो तरह का प्रमाण होता है। एक तरह का प्रमाण हम अपने लिए सोचते हैं - हम अपने आप को प्रमाणित करना चाहते हैं। दूसरे कोई आदमी कहें कि आप मुक्त हो, तब, “हाँ, उसने कह दिया मैं मुक्त हूँ।” हम हमेशा चाहते हैं दूसरे हमारी तारीफ करें, हमको बोलें कि हम बहुत अच्छे हैं। क्यों? हमारे भीतर विश्वास नहीं होता कि हम अच्छे हैं। यदि ही जाये तो चाहे सारी दुनिया कहे कि आप बुरे हो, तब भी आप कहोगे, “नहीं, हम तो अच्छे हैं।” अच्छे-बुरे की बात तो सामाजिक है, मगर भक्ति की बात ऐसी बात नहीं। प्रेम ऐसा नहीं है। प्रेम स्वयं ही प्रमाण है। प्रेम ही प्रमाण है और उसके लिए दूसरे कोई प्रमाण की आवश्यकता नहीं। सूर्य है, इसका क्या प्रमाण है? सूर्य ही प्रमाण है। सवेरा हो गया इसका क्या प्रमाण है? सवेरा है। स्वयं प्रमाणत्वात्, वह खुद ही प्रमाण रूप है।

फिर भी एक लक्षण बताते हैं। फिर कोई भी कह सकता है मुझमें बहुत प्रेम जाग्रत हो गया। कोई प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। मगर यह देखो, वे शांत हैं क्या ? और आनन्दित हैं क्या ? आनन्द तो आप देख ही नहीं रहे, बैचैन हैं, बैठ नहीं पाते, बोल नहीं पाते और कहते हैं “मैं तो सिद्ध हूँ।” तो बैठते बैचैन, उठते बैचैन, और कहे “प्रेम में मस्त हूँ” - मस्ती में एक निश्चिन्तता नज़र आये और एक शान्ति महसूस हो, तब जानना प्रेम है। प्रेम का स्वरूप ही शान्ति है। भक्ति का स्वरूप शान्ति है, भक्ति का स्वरूप आनन्द है, मस्ती है।

**शान्तिरूपात् परमानन्दरूपाच्च ॥**

**लोक हानौ चिन्ता न कार्या, निवेदितात्म लोकवेदशीलत्वात् ॥**

जब भी तुम शान्ति को पाओगे, उस शान्त चेतना में अनायास प्रेम और भक्ति का प्रस्फुरण होता है, उदय होता है। यदि बैचैन हो तुम तो प्रेम की खोज में मत निकलो। हम प्रेम कैसे पायें, भक्ति कैसे करें? बस, करें। यह करने की जो चेष्टा से फिर हम और बैचैन हो जाते हैं। शान्ति रूप है प्रेम, शान्त हो जाओ। तुम कहीं भी शान्त हो सकते हो, यह शान्ति तुममें निहित है। किसी भी वक्त, कभी भी, सुबह, दोपहर शाम, रात, कभी भी तुम शान्त हो सकते हो। तो जैसे ही तुम शान्त हुए, तो भक्ति अपने आप तुम्हारे भीतर झलकने लगती है, पनपने लगती है। मस्त हो जाओ, तल्लीन हो जाओ, कुछ भी करते हो उसमें शत् प्रतिशत् झूबो, उसका आनन्द लो - तब भी तुम भक्ति को अपने भीतर पा लोगे - लोक हानौ चिन्ता न कार्या, निवेदितात्म लोकवेदशीलत्वात् शान्तिरूपात् परमानन्दरूपाच्च, जीवन में यदि कभी तकलीफ आ जाये, कुछ नुकसान हो जाये, तब बैठकर चिन्ता मत करो क्योंकि तुमने सब उनको समर्पण कर दिया है। उनको निवेदन कर दिया, अर्पण कर दिया, - अपने आप को अर्पण कर दिया, तो अब उनका काम है। न

केवल तुमने अपने आप को चढ़ाया, अपने परिवार को चढ़ाया, अपने संसार को भी उनको चढ़ा दिया - निवेदितात्म लोकवेदशीलत्वात् । सबकुछ उनको समर्पण कर दिया, यहाँ तक कि शील को भी समर्पण कर दिया । अब यह नहीं सोचो कि कोई क्या कहेंगे । तुम्हारे बारे में, चाहे कोई कुछ समझे, तुमने सब कुछ उनको समर्पण कर दिया ।

**न तद् सिद्धौ लोक व्यवहारो हेयः**

**किन्तु फलत्यागः तत्साधनं च कार्यमेव ॥**

जब तक प्रेम की सिद्धि नहीं होती, तब तक कभी कुछ छोड़ना नहीं, नियम को छोड़ना नहीं । उसके फल की इच्छा छोड़कर अपना सब काम करते रहो । यह नहीं कि हमने भगवान को सब दे दिया - घर, सब-कुछ, बच्चे को भी, पत्नी को भी - सब को मैंने भगवान को समर्पित कर दिया, अब मैं कुछ नहीं करूँगा । तब गड़बड़ होगा । तुम करते जाओ । भोजन बनाना है - तुम बनाते जाओ, यह नहीं कि यह काम भी भगवान को दे दिया मैंने । मैंने सब कुछ आपको दे दिया । मैंने अपना जीवन दे दिया । मेरा business भी आप ही का है । आप ही के नाम से कर दिया । यह बचने की तरकीब है । अपनी ज़िम्मेदारी से हटने की । और गुरुजी के नाम से कर दिया । बिज़नेस का पार्टनर बना दिया ! (हँसी)

**लोक व्यवहारो हेयः** लोक का व्यवहार जो है वह करते जाओ, एक मर्यादा में रहो, ऐसा नहीं, “मैं प्रेमी हूँ, मुझे क्या, मैं जो चाहूँ वह करूँ ।” ऐसा नहीं । तुम ज्ञानी हो सकते हो मगर समाज में सबके साथ मिल कर रहो । कन्नड़ के एक कवि ने बहुत सुन्दर कहा है - कहते हैं कैसे रहना चाहिए दुनिया में । .... पहाड़ के नीचे घास बन कर । घास के रूप में रहो पहाड़ के नीचे, पेड़ बनकर रहोगे तो पता नहीं कब कोई

चट्टान गिरकर तुम्हें तोड़-फोड़ देगी। मगर घास के रूप में रहो - जो भी बाढ़ आये, तूफान आये, पत्थर गिरे, तुम्हें कुछ नहीं होगा। घास बनो पहाड़ के तले।

घर के आँगन में चमेली बनो। घर में यदि दुर्गन्ध भी हो तो चमेली दुर्गन्ध को खाकर सुगन्ध कर देगी। और चमेली की सुगन्ध तुम्हारे घर के भीतर भी जो दुर्गन्ध है उसे बाहर नहीं जाने देगी और बाहर के दुर्गन्ध को अन्दर नहीं आने देगी।

विधि जब मुसीबतों की बारिश बरसाये तुम पर, तुम पत्थर बन जाओ। यदि विधि या कर्म तेरे ऊपर मुसीबतों को बरसायें, तब तुम पत्थर जैसे बन जाओ।

गुड़ और शक्कर बन जाओ दीन और दुःखियों के लिए। उत्सव उसी दिन है जिस दिन गरीब को मिठाई मिले। उसी दिन उसका त्यौहार है, जन्मदिन है। उत्सव उसी दिन है। तो तुम मिठाई बन जाओ गरीबों के लिए।

सब में एक हो जाओ, 'बेवकूफ'; जब सब में एक होता है तब बेवकूफ भी ज्ञानी हो जाता है, उसी वक्त। यदि ज्ञानी अपने को अलग मानता है, सबसे अपने को हटाता है, समष्टि से, समाज से, व्यक्ति से, तब वह भी बेवकूफ बन जाता है .....।

जय गुरुदेव

# प्रेम मूरत और तीरथ

## प्रेम मूरत और तीरथ

जो सद्वस्तु है वह नित्य प्राप्त है, हमेशा है ही, उससे प्रेम होना, खुशी है, आनन्द है। और जो असत् है, जो है नहीं, उसमें प्रेम हो जाना दुःख है। अप्राप्य वस्तु के प्रति प्रेम होना दुःख है। और अप्राप्य वस्तु के प्रति कामना कैसे होती है ? श्रवण से, सुनने से। है नहीं मगर शब्दों के द्वारा ज्ञान हुआ, फिर उसके प्रति चाह हुई। किसी ने तुमको कह दिया वहाँ जाओ, बहुत सुन्दर जगह है, यह है, वह है। किसी ने कह दिया पाताल भुवनेश्वरी है, वहाँ जाओगे तो तुम ज्ञानी हो जाओगे, मुक्त हो जाओगे। किसी ने इस बात का इंगलैन्ड में प्रचार कर दिया। इंगलैन्ड से लोग चलकर आये, जितने भी पैसे थे, सब इकट्ठा करके, एक बहुत बड़ी कल्पना लेकर हिन्दुस्तान चले, वहाँ से आए, हिन्दुस्तान पहुँचे। वहाँ जाकर देखा, जैसे और तीर्थ स्थान है, एक और तीर्थ स्थान है। कुछ हुआ तो नहीं। एक अम में रहे कुछ समय तक। काल्पनिक श्रवण से हम प्रेम से हटते हैं, कामना में उतरते हैं।

तो अगले सूत्र में कहते हैं -

स्त्रीधन नास्तिक वैरि चरित्रं न श्रवणीयम्।

यहाँ स्त्री माने सिर्फ स्त्री नहीं, स्त्री हो, पुरुष हो। कहते हैं स्त्रीधन नास्तिक वैरि चरित्रं न श्रवणीयम्। शान्त मन में खल-बली

मचती कैसे ? किसी ने किसी के चरित्र का वर्णन कर दिया । वे वैसे हैं, ऐसे हैं, उनके बारे में सुना, तो चेतना में हलचल मच गई । इसी प्रकार धन - “देखो उसने इतना करोड़ बनाया, उसने इतना लाख बनाया” । आदमी ठीक था, सुनते ही, “अरे ! मैंने नहीं बनाया । मैंने कुछ नहीं बनाया, मेरा क्या होगा ? अरे, उसने इतना पैसा जमा कर लिया, मैं कैसे करूँ ?” अब दौड़ शुरू हुई । सुन्दरता को, धन को, सम्मान को, यश को हड़पना चाहते हैं । जब यह हड़पने की दौड़ चलती है तो फिर मस्ती, प्रेम, आनन्द सब खो जाते हैं । इसमें खँटा लग जाता है ।

नास्तिक लोगों के बारे में भी मत सुनो, बैठकर चर्चा न करो । जिसके प्रति जो तुम सोचते हो, तुम वैसे हो जाते हो । यह आप प्रयोग करके देखिये, जो बहुत प्यारे हैं आपके, उनके बारे में सोचो, चेतना में कैसी एक मधुरता, एक हल्कापन, तुरन्त होने लगता है । और कोई वैरी, दुश्मन, उनके बारे में सोचो, एकदम चेतना में कुछ खटकता है । ऐसा लगता है आपकी ऊर्जा जा रही है, कुछ जल रहा है आपके भीतर । यदि आप चौबीस घंटे आपके दुश्मन के बारे में सोचते रहोगे तो आपका पूरा-पूरा nervous system, शरीर, यह पूरा उनके जैसा बन जाता है । आपने गौर किया होगा कि हनुमानजी के भक्त होते हैं, मन्दिर में बरसों से पूजा करते हैं, उनका चेहरा भी कुछ हनुमानजी की तरह लगने लगता है । या कोई कालीजी के भक्त हैं, तो काली की पूजा करते-करते उनके चेहरे में भी आप पायेंगे, कुछ ऐसी उग्रता या काली के जो गुण हैं, वे आ जाते हैं । देवी के भक्त हों तो देवी का लक्षण आ जाता है । जैसा हम सोचते हैं वैसा बीज पड़ता है और उसी तरह हमारी चेतना विकसित होने लगती है । स्त्रीधन नास्तिक वैरि चरित्रं न श्रवणीयम् ।

कोई आकर आपके सामने आपके वैरी के बारे में बहुत बढ़ा-चढ़ा करके बताए, आप में जलन होगी, इर्ष्या होगी, दुःख होगा या लालसा जागेगी। जो जैसा है वैसा कम आदमी ही बताते हैं। जो भी आप सुनते हैं उसमें लोग हमेशा कुछ बढ़ा-चढ़ाकर ही बताते हैं। या कम करके बतायेंगे। जो जैसा है वैसा बताना बहुत कम लोगों के बास की बात है। अक्सर लोग जो जैसा है उससे कम बतायेंगे या बहुत ज्यादा बढ़ा-चढ़ा कर बतायेंगे। तो वैरी के बारे में यदि कम सुनोगे तो भी तुम्हारी चेतना में गर्व आयेगा। “अरे, वह क्या है”। उसके बारे में अधिक सुनोगे तब भी तुम्हारी चेतना में खलबली मच जायेगी। इसी लिए स्त्रीधन नास्तिक वैरि चरित्रं न श्रवणीयम् ।

इसलिए कहते हैं, ये अश्लील किताबें, पुस्तकें, चित्र-पत्रिकाएँ, ये सब हिंसा के कारण बनते हैं क्योंकि सोच-सोच कर वासना के प्रति दिमाग में आदमी विकृत होने लगता है। यह सब पढ़-पढ़ कर फिर उस तरह की हिंसाचार पर उतरता है।

पैसे के बारे में भी वैसे ही। बहुत ज्यादा सुनते जाओ तुम, फिर पैसे के बारे में सोचते-सोचते आदमी इतना लोभी बन जाता है, उस पैसे का उपयोग भी नहीं कर पाता है और जीवन खत्म हो जाता है। आधा जीवन पैसे कमाने में, और आधा जीवन शरीर में जो रोग ले लिया, उसको ठीक करने में। आधे से ज्यादा पैसा स्वास्थ को ठीक करने में लग जाता है। घी वाली रोटी खाने के लिए पैसा कमाया, मगर जब कमाया तब तो फिर घी खा ही नहीं सके, सूखी रोटी खानी पड़ी। सूखी रोटी पहले भी खाते थे, बदाम रोगन अब छू भी नहीं सकते, डाक्टर ने मना कर दिया।

नास्तिक के बारे में भी यही बात है। नास्तिक व्यक्ति इतना जड़ होता है उसके बारे में सुनोगे, सोचोगे, फिर तुम्हारी चेतना में भी शब्दा, प्रेम, भक्ति भाव, सब टूटने लगेंगे। नस्तिक माने क्या है ? जो वस्तु को ही प्रधानता देता है। जिसकी दृष्टि में चेतना का कोई स्थान ही नहीं है। “यह” का स्थान है, अर्थात् जो वस्तु का स्थान है, चेतना का, जीवन का, ज्योत का कोई स्थान नहीं है। वह उसके बारे में सोचता ही नहीं। ऐसे जड़ व्यक्ति के सम्पर्क में, या उसके बारे में, उसके चरित्र को सुनते-सुनते, तुम्हारे भीतर भी उस जड़ता की ओर जाने का मन हो जाए, तो तुम भी प्रेम खो बैठोगे। नास्तिक वैरि चरित्रं न श्रवणीयम्। उसमें आसक्ति लेकर नहीं सुनो। इसका मतलब यह नहीं कोई किसी के बारे में कहता है तो तुम कान बन्द करके भागो। नास्तिक को नहीं देखना माने कोई नास्तिक आ गया तो आँख बन्द करके भागो - यह नहीं। वैरि के प्रति आसक्त मत हो। तुम अपनी तरफ से तो वैर रखो ही नहीं। प्रेम का यही मतलब है कि हम अपनी तरफ से किसी को वैरी मानें ही नहीं। मान लो फिर भी कोई वैरी हो जाए या लगे, उनको लगे, तुम्हारे भीतर जरा सा भी लगे, फिर वे क्या कर रहे हैं, उनका कैसा चल रहा है, इसके प्रति बहुत आसक्त मत होना। वह आसक्ति भी तुम्हारी चेतना को धूमिल कर देती है।

### अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम्॥

दम्भ और अभिमान को भी छोड़ दो। यह भी प्रेम के लिए अनुकूल नहीं है, यह प्रतिकूल है। छोटे अभिमान में क्या रखा है ? तुम हो क्या ? तुम अपने आप को बहुत बड़ा समझते हो ? दुनिया में चाहे

बड़ा नहीं समझा, आध्यात्मिक में बड़ा समझने लगते हो। “मेरे जैसे कोई सन्त हुए ही नहीं, मैं सबसे बड़ा हूँ,” या “मेरे जैसा कोई जानी ही नहीं है, मेरे जैसा पवित्र व्यक्ति नहीं है,” यह भी अभिमान है। या “मैं बिल्कुल बेकार आदमी हूँ, मैं नालायक हूँ, मैं किसी काम का नहीं हूँ”। हम अभिमान माने एक ही तरह सोचते हैं, मगर अभिमान के दो पहलू हैं। अपने आप को बिल्कुल नीच समझना भी एक तरह का अभिमान है और अपने आप को बहुत ऊँचा समझना भी। तो अभिमान छोड़ने लायक है। अभिमान ऐसा पत्थर है, मन में फूल जैसा तेरा जो प्रेम है, वह उसके ऊपर बैठ जाता है। अभिमान के पीछे-पीछे दम्भ होता है। दम्भ माने दिखावा, आडम्बर - दूसरों को दिखाने के लिए जो कुछ करते हैं, यह दम्भ है। और यह कहाँ तक कर पाओगे ? क्योंकि “लोको भिन्न रुचि”। सब की रुचि अलग-अलग है, तुम कैसे भी हो, कोई न कोई तुमको गलत बतायेगा ही। किसी को पसन्द आये, किसी को नहीं। अब तुम्हें क्या पता किसको क्या पसन्द है? अब हर एक के मुताबिक तुम चलोगे, दम्भ करोगे ? दम्भ का मतलब क्या है? सबको दिखाना “मैं कुछ हूँ”। ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा दम्भ है। मैं कहता हूँ, मान लो आपने ध्यान आकर्षित कर भी लिया, इससे फायदा क्या है ? मान लो आप अपने धन या अपनी प्रतिभाओं का प्रदर्शन करते हैं, तो देखने वाला आदमी ईर्ष्या से भर जायेगा, फिर आपको नुकसान पहुँचायेगा। तुम्हारा दोस्त नहीं, दुश्मन हो गया। दम्भ से दोस्त भी दुश्मन हो जाते हैं। क्यों ? दम्भ किसी को नहीं पसन्द, उसमें अपनापन नहीं है। तभी तो दम्भ होता है। तो दूसरे देखकर तुमसे ईर्ष्या करेंगे या उनमें ऐसी कामनाएँ उठेंगी, “मुझे भी ऐसा होना है।” लोभ उठेगा। तो

लोभ और ईर्ष्या के वश औरों को करने से तुम्हें क्या लाभ मिलेगा ? तुम भी गये, वे भी गये, दोनों एक दूसरे को लेकर ढूबे, इसी को दम्भ कहते हैं। अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम् ।

भई वैसे कोई देखें, देखने दो। तुम्हारा स्वभाव, तुम्हारा जो भी अर्जित है, उसको देखकर कोई ईर्ष्या में आ जाए तो आ जाये, तुम क्या करोगे ? तुम्हारी नाक अच्छी है, आँख अच्छी है, कोई देखकर ईर्ष्या करें, तो तुम कुछ नहीं कर सकते न? मगर जबर्दस्ती दिखाने की जो तुम चेष्टा करते हो, उस चेष्टा से तुम्हारी ही चेतना में भारीपन हो जाता है। इसका मतलब यह नहीं है कि तुम अच्छी तरह से सजधंज कर नहीं रहो। यह बात नहीं है। मगर दिखावा करने का, ध्यान आकर्षित करने की एक पिपासा है, प्यास है तुम्हारे भीतर, उससे हटो। तब तुम घण्टों सजने की कोशिश नहीं करोगे। साफ-सुथरे रहोगे, मगर कई लोग घण्टों तैयार होने में लगा देते हैं। कोई विवाह हो, कोई पार्टी हो घर पर, बस अपने पूरे ऐश्वर्य का प्रदर्शन करते हैं और जो उस प्रदर्शन में जाते हैं, वे भी बहुत बेचैन होकर लौटते हैं - “देखो, कितना प्रदर्शन करते हैं।” उनको गाली देकर जाते हैं। सामने कहेंगे, “ऐसी शादी तो हमने देखी ही नहीं।” उनको बधाई तो दे देंगे सामने, पीछे मुड़कर बोलते हैं, “देखो इतना दम्भ करने की क्या ज़रूरत थी।” क्योंकि जो कुछ भी करते हैं दूसरा आदमी कहता है इससे मैं ज्यादा करके दिखाऊँ। तीसरा उससे ज्यादा, प्रतिस्पर्धा की जो भावना है, “उससे बेहतर मैं करके दिखाऊँगा” - यह दम्भ है, यह भी प्रेम के लिए अनुकूल नहीं है। प्रेम जोड़ता है, प्रतिस्पर्धा तोड़ती है। दम्भ तुमको अलग करता है। तुम अपने से दम्भ नहीं करते हो, दूसरों के साथ दम्भ

करते हो। जब दूसरे हैं ही नहीं, फिर दम्भ कैसे करोगे? जब इस दम्भ को छोड़ोगे, तभी तुम सबको अपना मानने लगोगे, उसी वक्त, उसी दिन। अभिमानदम्भादिकं त्यज्यम् ।

**तदर्पिताखिलाचारः सन् कामक्रोधाभिमानादिक तस्मिन्नेव करणीयम् ॥**

फिर जीवन क्या हुआ ? आप कहते हैं, काम नहीं, क्रोध नहीं, मोह नहीं, कुछ नहीं है, तब तो जीवन बड़ा फीका हो गया। यह तो कोई वास्तविक नहीं लगता है। क्रोधित होना स्वाभाविक है। एक बच्चे में भी क्रोध है। छह महीने का बच्चा, अभी उसने दुनिया भी नहीं देखी, बोलना भी नहीं आता है, मगर उसके हाथ से कोई चीज़ छीन लो, कितना गुस्सा करता है। चाह स्वाभाविक है, गुस्सा भी स्वाभाविक है और अभिमान भी स्वाभाविक है। अब इनके परे जाएँ कैसे ? एक बालक भी कुछ दिखाना चाहता है। उसने पेन्टिंग बनाई, वह सबको दिखाना चाहता है। इस तरह से अभिमान का एक सूत्र जीवन की धारा में चल रहा है। इससे कैसे छूटें या इसको कैसे परिवर्तित करें? इसके बिना तो चलता नहीं है।

तब अगले सूत्र में कहते हैं -

**तदर्पिताखिलाचारः सन् कामक्रोधाभिमानादिक तस्मिन्नेव करणीयम् ।**  
उसमें ही, उन्हीं को, सब आचरण समर्पित कर दो। जो भी तुमने किया है, करने के बाद, “मैंने ऐसा कर दिया,” करके कर्त्तापन मत पालो। हम ये कहते हैं, पता नहीं चलता, कभी कुछ कर बैठते हैं, फिर उसके बाद ऐसा कर दिया, ऐसा कर दिया, करके आत्मग्लानि करते हैं। जितना दम्भ और अभिमान प्रेम के लिए बाधक है, आत्मग्लानि भी

बाधक है। गुरु होते ही हैं इसीलिए जिनके पास जाकर अपनी सब ग्लानि को बहा दो, सब तरह के अभिमान को बहा दो। अभिमान तो टिकता ही नहीं गुरु के सामने, टिक ही नहीं सकता। न दम्भ टिकता है, न अभिमान - आत्मग्लानि यदि टिक जाएगी तुम्हारे भीतर, उसको भी गुरु के पास जाकर समर्पण कर दो। ज्ञानी के पास जाकर समर्पित कर दो। तदर्पिताखिलाचारः सन् कामक्रोधाभिमानादिक तस्मिन्नेव करणीयम्। आत्मग्लानि यदि होवे, भगवान को समर्पित कर दो और काम, क्रोध, अभिमान को भी उनके साथ जोड़ दो।

कामना यदि उठे, तो उसी की कामना करो। जब उसी की कामना हो जाती है, और कामना कुछ रह नहीं जाती। गुस्सा करना हो तो उसी पर करो, और किसी से करके क्या लेना देना? करना है तो उसी पर करो। क्रोध भी उसी पर करो, कामना भी उसी की हो और अभिमान भी उसी का करो। ऐसा अभिमान करो क्योंकि तुम उसके हो। मालिक तुम्हारा है। दुनिया का मालिक तुम्हारा है, तो तुम्हारे अभिमान की कोई सीमा है? अभिमान को भी इतना वृहद रूप दे दो। प्रेम बच जाता है। प्रेम की मौत होगी नहीं फिर, तभी प्रीत पुरानी होती है। अकसर लोगों का प्रेम पुराना होता ही नहीं, वह तो ताज़ा-ताज़ा रहता है और जल्दी मर जाता है। दो-चार दिन प्रेम हुआ, बस पाँचवें दिन वह खत्म हो जाता है। प्रीत पुरानी होनी हो, जन्म-जन्मों तक यदि प्रीत को चलनी हो, तो काम, क्रोध, अभिमान, उसी से करो। औरों से करके तनाव से भरोगे, उससे करोगे तो भक्ति में बढ़ोगे। सीमित दृष्टिकोण से काम भी, क्रोध भी, मोह भी, अभिमान भी तुम्हें थका देगा। तुम थक जाओगे, तनाव से भर जाओगे, क्षीण होने लगोगे; मगर

वही क्रोध, वही कामना, वही अभिमान, उस विराट से करोगे, तो फिर तुम और पनपोगे।

**त्रिरूपभङ्गपूर्वकं नित्य दास्य नित्यकान्ता भजनात्मकं प्रेम  
कार्यं प्रेमैव कार्यम्॥**

त्रिरूपभङ्गपूर्वकं । तीन तरह का प्रेम है, त्रिरूप, तीन रूप-सात्त्विक, राजसिक और तामसिक प्रेम। इनसे परे भी एक प्रेम है, वह भक्ति है, वह पूर्ण है और इन तीनों को समेटे हुए है। त्रिरूपभङ्गपूर्वकं ।

नित्य दास्य, नित्य कान्ता दो तरह का प्रेम मुख्य है। एक तो दास का भाव - आप मालिक हो, मैं दास। दूसरा सखा भाव, कान्ता भाव। सखा भाव हो या दास भाव, इन दो ही भाव में निकटता है। इन दो भावों से तुम शुरू करोगे, तो आत्म भाव में उतरोगे। पहले दास भाव, जिसमें मर्यादा, सम्मान रहे, फिर कान्ता भाव। यदि बहुत अधिक मर्यादा भाव हो जाये तो फिर भय आ जाता है उसके पीछे, भय से प्रेम को चोट लगती है, प्रेम पीछे होने लगता है। तो भय से दूर होने के लिए कान्ता, सखा, उस रूप के प्रेम में आओ। सिर्फ सखा के रूप में प्रेम हो तो झगड़ा होता है। झगड़ा करोगे, माँग करोगे, तुमने ऐसा क्यों नहीं किया? ऐसा करो, अधिकार जमाओगे। दास हो तो अधिकार नहीं जमा सकते, दास कभी अधिकार नहीं जमाता है। कान्ता हो तो अधिकार जमाता है, सखा हो तो अधिकार जमाता है। मगर इन दोनों के सन्तुलन से ही पूर्णता होगी। भय को मिटाने के लिए सखाभाव में आओ और झगड़े मिटाने के लिए, अपना अधिकार जमाने की जो प्रवृत्ति है, इसको हटाने के लिए दास भाव में उतरो।

नित्य दास्य नित्य कान्ता भजनात्मकं इस तरह से भजो, इस तरह से भाग लो, उसके साथ। भजना का अर्थ क्या है ? उसके साथ भागीदार होना, उसके साथ एक होना। कैसे ? दास के रूप में भी और सखा के रूप में भी। सखा मानोगे तो बहुत पास महसूस करोगे। और दास मानोगे तो दुखी नहीं होगे। दास कभी उदास नहीं हो सकते। सखा उदास हो जाते हैं कभी-कभी। अरे, मेरे सखा ने मुझे देखा नहीं, मुझ से बात नहीं किया। सखा-सखी के बीच में जो तकलीफ़ है, वह दास भाव उसके साथ ज़रा सा मिल जाए, तो भिट जाएगा। एक दूसरे का दास - ऐसा नहीं “तुम मेरे दास हो”। ‘तुम मेरे दास हो’ तो उदासी होगी, दास नहीं होगा, उदास होगा। दास भाव में कभी उदासी हो ही नहीं सकती। सखा उदास हो सकता है, दास नहीं। तो नित्य, माने कभी-कभी नहीं, रोज़-रोज़ दास भाव और सखा भाव में, भजन करते हुए प्रेम कार्य प्रेमैव कार्य प्रेम ही करना है, प्रेम ही करना है, और कुछ नहीं करना है।

अगला सूत्र है -

**अक्षराणुकान्तिनो मुख्याः॥**

अच्छा हम दास होते हैं तो कई लोगों के दास हो जाते हैं। सखा होते हैं, सबके सखा हैं, यह नहीं होता। पहले तो एक के ही सखा हो जाओ। जब तुम एक हो जाओगे, फिर सबके सखा हो जाओगे। जब तक तुम एक के नहीं हुए तब तक एक का ही सखा बनो और एक का ही दास बनो, इसलिए कहते हैं अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम तस्मात् कारुण्य भावेन रक्ष रक्ष महेश्वरः।

जब प्रणाम करते हैं तो कहते हैं, “भगवान मैं सिर्फ तेरे शरण में आता हूँ”। भक्ति में एक दृष्टिकोण, जिसको कहते हैं ना one-point-edness, एकान्तता - एकाग्रता और अनन्यभाव आवश्यक है, वह मुख्य है। भक्तों में वह और मुख्य है। जिसकी लगन एक तरफ लग गयी, जिसकी दृष्टि इधर-उधर भागने की कोई सम्भावना नहीं है। भक्ता एकान्तिनो मुख्याः ।

**कण्ठावरोधरोमाज्ञाश्रुभिः परस्परं लपमानाः पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च ॥**

जब ऐसा एकमुखी प्रेम होता है तब कण्ठावरोध गला रुँधता है, रोमांच होता है पूरे शरीर में, और आँसू बहते हैं। उसके बारे में बोलने से आँसू बहते हैं। उसकी कथा सुनने से आँसू बहते हैं, उसकी चर्चा में रोमांच होता है। यह प्रेम का लक्षण है। यह मुख्य भक्त का, प्रधान भक्त, पूर्ण भक्त का यह एक लक्षण है। **कण्ठावरोधरोमाज्ञाश्रुभिः परस्परं लपमानाः ।**

एक दूसरे को सुनाते जाते हैं उसकी कहानी, उसकी महिमा, एक दूसरे से यही चर्चा करते रहते हैं। पावयन्ति कुलानि अपने कुल को भी पवित्र करते हैं और दूसरे को भी पवित्र करते हैं। जहाँ जाते हैं वहाँ लोगों के भीतर प्रेम जगाते हैं। उनके मन का मैल धोते हैं और पवित्र करते हुए चलते जाते हैं।

**तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि,  
सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि ॥**

ऐसे व्यक्ति जहाँ चलते हैं वह स्थान पवित्र हो जाता है - भक्तों की यही महिमा है। भक्त जहाँ भी जाता है, वह स्थान को पवित्र कर जाता

है। वहाँ के जन-मन को पवित्र कर देता है।

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि, सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि। ऐसा भक्त ही, माने यह मत समझो “कोई और भक्त हैं, हम नहीं हो सकते।” मैं कहता हूँ तुम भी हो। तुम कोई कम नहीं हो। बस, एक ही दृष्टि आ जाए, एकान्तित हो जाए तुम्हारा प्रेम। तुम भी भक्त हो।

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि। तीर्थ स्थान तीर्थ स्थान होता ही है सन्तों से, प्रेमियों से, पण्डियों से नहीं। जहाँ प्रेमी बैठते हैं, वही तीर्थ स्थान है। जहाँ ज्ञानी बैठते हैं वही तीर्थ स्थान हो जाता है। तीर्थ तीर्थ बना इसीलिए कि वहाँ कभी न कभी प्रेमी, ज्ञानी रहे। तो तीर्थ को भी तीर्थ बना देते हैं। हर कर्म सुकर्म हो जाता है। वे कुछ भी करें, वह कर्म पवित्र होने लगता है क्योंकि भक्त कुछ गलत कर ही नहीं सकता। करेगा कैसे, भक्त को कुछ चाहिए ही नहीं। उसके कण-कण में समर्पण है। उसके कण-कण में, हर साँस में सबके लिए श्रेय ही श्रेय है। “मैं”, “मैं” कुछ है ही नहीं भीतर, या उस “मैं” में सब कोई है। जैसे घर का प्रधान व्यक्ति घर के हर व्यक्ति को अपना समझता है, इस तरह एक भक्त के लिए सब कोई अपने हो जाते हैं, यह भी नहीं है। हैं। सब हैं ही, मगर यह जान लेते हैं। “सब कोई मेरे हैं” यह जान लेते हैं, कुछ करना नहीं पड़ता, यह हो जाता है।

सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि। जो भी कर्म करते हैं वह सुकर्म हो जाता है, अच्छा कर्म हो जाता है।

सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि। शास्त्रों को सच्चा शास्त्र बना देते

हैं। मगर जो सुना है, लिखा है, उसको प्रमाणित कर देते हैं। जीवन में उतरे शास्त्र, तभी वह सच्चा शास्त्र हुआ। जो सिर्फ़ किताबों में रहा, तब वह सच्चा शास्त्र नहीं हुआ। सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि। शास्त्रों को जीवन में उतार लिया है, तब उस शास्त्र की महिमा बढ़ गई। भई, अज्ञानी का लक्षण यह है, वह समझता है वस्तुओं से उसका खुद का मूल्य बढ़ जाएगा। “मेरे पास गाड़ी हो तो मेरा मूल्य बढ़ जाएगा।” वह अपना मूल्यांकन वस्तुओं से करता है। यह अज्ञानी का लक्षण है।

जानी से वस्तुओं की महत्ता बढ़ती है। अब एक चप्पल महात्मा गाँधी पहनें, तो उसका मूल्य बढ़ गया। वह वैसी पुरानी फटी हुई चप्पल, साबरमती आश्रम में रखी हुई, मगर उसका महत्त्व इसीलिए बढ़ गया। वह एक छोटा सा लोटा, उस लोटे में क्या है? मगर गाँधीजी ने उसका इस्तेमाल किया तो उसका महत्त्व बढ़ गया।

व्यक्ति से वस्तुओं का महत्त्व बढ़ जाना, यह ज्ञान का लक्षण है। तुम जिसपर बैठते हो, जहाँ खड़े होते हो, उससे उन वस्तुओं में एक चमक, एक महत्ता आ जाती है। बुद्ध बोधि वृक्ष के नीचे बैठे तो उस बोधि वृक्ष को एक महत्ता दे दी। बोधि वृक्ष से बुद्ध को महत्त्व नहीं मिला। इस तरह से शास्त्रों के जीवन, उनका जीवन होने के नाते, शास्त्र को भी सच्चा शास्त्र करना। शास्त्र यही है, जीवन का ही एक संग्रह, अनुभवों का संग्रह ही शास्त्र है। भक्त यह प्रत्यक्ष निर्दर्शन करके बता देते हैं।

### तन्मया:॥

उनके कण-कण में वही है। प्रेमी के कण-कण में प्रेमास्पद है। जिसके प्रेम में वे पड़ गये, उन्हीं से वे भर गये। तन्मया:। उन्हीं से भरने

के नाते यह सब होता है।

यह शरीर जो पाँच तत्त्वों से बना है, पंचभूतों से बना है, यह क्या है ? यह शरीर उसी का है। जब यह जान लिया यह शरीर उसी का है, इसके भीतर जो मन है, वह भी उसी का है, जो जानने की शक्ति है, वह भी उसी की ही है, तब “मैं” रहा कहाँ ? वही है। वही है। जब हर क्षण में उसी का ही स्मरण है, तो स्मृति भी उसी की है, स्मरण शक्ति भी वही है, तब तन्मयः । तब कहते हैं, वही है, उसके सिवा कुछ है ही नहीं। जो भी प्रशंसा हम सुनते हैं किसी से, वह सब प्रशंसा उसी की है। या गाली सुनते हैं, वह गाली भी उसी की है।

इस तरह से हर तरह, वही, वही, जब छा गये - तब, तन्मयः - उससे भरा हुआ है। भक्त भगवान से अलग नहीं है। भक्त ही भगवान है। भगवान को खोजने मत निकलो। भक्तों को खोज लो, बस भगवान मिल ही गए। और भक्तों को भी खोजने मत जाओ, तुम भी तो भक्त हो। अच्छा, भक्ति की खोज ही भक्त है न? जो भक्तों को खोजने लगा, वह खुद ही भक्त हो ही गया, उसी वक्त।

**मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः, सनाथा चेयं भूर्भवति॥**

जो आत्मा गुज़र चुकी है, वह आत्मा भी इससे संतोष करती है। जो लोग गुज़र चुके हैं वे जीवात्माएँ भी; जिनकी चेतना वातावरण में घूमती है, वह चेतना भी कीर्तन में, भक्ति में, आनन्दित हो उठती है। देवता माने सूक्ष्म शक्तियाँ, सूक्ष्म शरीर; उस सूक्ष्म शरीर में भी जागृति होती है, आनन्द मिलता है। मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः देवता लोग नाचते हैं - सूक्ष्म जगत का भी आनन्द। एक भक्त की मौजूदगी में उत्सव हो जाता है।

मन या जीव शक्ति है और शक्ति का कभी हास नहीं होता। जो चलता-फिरता आदमी आज दिखता है, नज़र आता है, या कल नज़र आता था, आज नहीं है, वह कहाँ गया ? शरीर तो मिट्टी में मिल गया, मगर वह चेतना, वह शक्ति, कहाँ गई ? वह इसी पितृलोक में मौजूद है। जब हम ध्यान में, गहराई में, उतरते हैं तब मालूम पड़ता है कि यह जो हमारी चेतना है, इसका बहुत विस्तार है। इसी में देवता हैं। देवताओं का जगत, पितरों का जगत, यक्षों का जगत, गन्धर्वों का जगत, हर स्तर पर हमारी चेतना की पहुँच है, क्योंकि हर स्तर प्रेम से बना है और प्रेम का प्यासा भी है। तुम प्रेम हो और तुम्हारी तलाश भी प्रेम की ही है। यह जानना “मैं प्रेम हूँ” और वर्तुल पूरा हो जाता है, सिर्फ सुनने से नहीं। **तन्मया:** - ऐसे भक्त के चारों ओर जो वातावरण है, जो तरंग है, उस तरंग से पितृ लोग, जो गुज़र चुके हैं, वे भी खुशी मनाते हैं। हिन्दुस्तान में रिवाज़ है ना, जब कोई गुज़र जाते हैं तो कीर्तन रखते हैं, सत्संग रखते हैं, क्यों ? सिर्फ कीर्तन, सत्संग, ऐसे सूखा-सूखा कर लेने से कुछ होगा नहीं। भावविभोर होकर, झूबकर, उसमें भाग लेना है। संवेदनशील हो, तभी उसमें झूबकर जा सकते हो। पहले एक सूत्र में बताया था ना, ज्ञान और भक्ति एक दूसरे के पूरक हैं। मोदन्ते पितरो, पितृ-लोग बड़े खुश हो जाते हैं। **नृत्यन्ति देवता:** सनाथा चेयं भूर्भवति। इस पृथ्वी को कोई नाथ मिल जाते हैं। जब भक्त चलता है पृथ्वी पर, भक्त ही नहीं चलता, भगवान चलते हैं। उनके कदम-कदम पर भगवान मौजूद हैं। भूमि को मालिक मिल जाते हैं, भूमि खुश हो जाती है।

**नास्ति तेषु जाति विद्या रूप कुल धन क्रियादि भेदः॥**

ऐसे भक्त में कोई जाति का भेद नहीं है। जाति की जो बात है ना, इसको लोगों ने पैदा किया है और उसको हर तरह से भड़काया। उच्च जाति का अभिमान भी अभिमान है, नीच जाति का अभिमान भी अभिमान है। क्रोध भी एक तरह का अभिमान है। मगर एक बात है, इस देश में हमेशा हर जाति के व्यक्ति को सम्मान मिला है, जब वह भक्त हो गया। इस बात को हम भूल गए। भारतवर्ष में सबसे ऊँची शिक्षा है कि यहाँ भक्ति को हमेशा मान्यता दी गई है। चाहे वे किसी भी जाति के क्यों न हों। ऐसे तुम देखोगे ऋषिओं में एक वामदेव, एक वशिष्ठ को छोड़कर बाकी सब ऋषि अलग-अलग जाति के हैं, ब्राह्मण नहीं हैं, मगर उन सबको पूजा गया है। रविदास चमार थे और मीरा उनकी शिष्या थी ! चांगदेव रहे, नामदेव रहे, कितने सन्त हुए हैं इस देश में - कबीर, नानक। हम इस बात को क्यों नहीं बता रहे हैं लोगों को? जात-पात का बहुत अन्याय तो हुआ है, उसी पर हम ध्यान दे रहे हैं, मगर इसपर भी ध्यान दो कि सन्तों को, ज्ञान को, हमेशा सम्मान दिया गया है। शंकराचार्य भी बोले, चण्डाल भी क्यों न हो, वह मेरा गुरु है। चण्डाल से उनको ज्ञान प्राप्त हुआ। कहते हैं - “न कोई चण्डाल है, न कोई विप्र है, एक ही ब्रह्म है, एक ही चेतना है” - इस ज्ञान को उभारा गया है।

नास्ति तेषु जाति विद्या। पढ़े लिखे आदमी हों, तभी वे भक्त हो सकते हैं, ऐसा नहीं है। किसी भी जाति का हो, वह भक्त हो सकता है, किसी भी विद्या के स्तर में वह पारंगत हो, वह भक्त हो सकता है। उनका रूप कैसा भी हो - सुन्दर हो, असुन्दर हो, छोटा हो, बड़ा हो,

नाटा हो। वे किसी भी कुल के क्यों न हों, और उनके पास धन हो या न हो, वे चाहे जो भी काम करते हों, वे सब प्रेमी हो सकते हैं। प्रेमी होने के बाद उनमें कोई भेद नहीं होता, लागू होता ही नहीं।

### यतस्तदीयः॥

क्योंकि वे उनके हो गए। वे उनके अपने हैं। जो मालिक का हो गया, वह किस जाति का हो सकता है ? उनका कितना धन हो सकता है ? पूरा धन उन्हीं का है, सभी जाति उन्हीं की है। भई, मालिक का ही सब कुछ है न ? तो जब उनके हो गए, उनके अपने हो गए, उनको प्यारे हैं, फिर कहना ही क्या !

### वादो नावलम्ब्यः॥

अब इस बात पर वाद-विवाद मत करो। वाद-विवाद पर तुम अवलम्बित मत हो। भक्त भगवान है कि नहीं ? कितना भगवान है ? इनकी मात्रा कितनी है ? यह अवतार है कि अवतार नहीं है ? यह सब चर्चा बेकार है। वाद-विवाद में उलझन ही उलझन है, वाद-विवाद दिमाग की भाषा है, दिल की भाषा में कोई वाद-विवाद नहीं है। जब दिल से हटकर हम दिमाग में फँसते हैं, तभी वाद-विवाद में हम फँसते हैं। तर्क दिमाग का विषय है। प्रेम अतार्किक है, प्रेम में कोई तर्क नहीं होता। प्रेमी जब तर्क करने लगता है तब प्रेम खो बैठता है। ऐसा होता है। प्रेमी व्यक्ति जब बैठकर तर्क करता है, फिर प्रेम खो जाता है।

दिमाग कभी मिलेगा नहीं, दिमाग कभी मिलता नहीं, दिल मिल जाते हैं। और दिमाग का काम यही होना चाहिए कि दिल को मिलाओ। दिमाग ही दिल को तोड़ सकता है, दिल दिल को नहीं तोड़ सकता।

दिमाग ही दिल को तोड़ सकता है और दिमाग ही दिल को जोड़ सकता है। और जब दिल जुड़ ही गये, तो दिमाग का अवलम्बन करते क्यों हो ? जब ऊपर चढ़ गये, हटाओ सीढ़ी को।

वादो नावलम्बयः । वाद-विवादों पर अवलम्बन मत करो। उस वाद को सहारा मत दो, क्योंकि कहते हैं -

**बाहुल्यावकाशत्वाद् अनिय तत्वाच्च ॥**

उसमें बहुत सम्भावनाएँ हैं। तुम वाद करोगे तो उसके विरोध में भी तर्क कर सकते हो, और दोनों ठीक लगेंगे। वकील ऐसे ही जीतते हैं। क्योंकि वे किसी भी केस को कैसे भी सिद्ध कर सकते हैं, काले को सफेद और सफेद को काला।

वाद को सहारा मत दो। बाहुल्यावकाश - उसमें बहुत सम्भावना है। किसी चीज़ को सही भी सिद्ध कर सकते हो, गलत भी सिद्ध कर सकते हो। भगवान कृष्ण को किसी ने भगवान सिद्ध किया, किसी ने उनको दुश्मन करके सिद्ध कर दिया। उसमें कोई नियति नहीं है। अक्सर जो वाद-विवाद करते हैं, वह सिर्फ बोलते जाते हैं, उसमें पूरी तरह होश नहीं होता। वाद माने शब्दों का एक सिलसिला चल पड़ा। अब पता नहीं वह कहाँ मुड़ जाये। कई बार व्यक्ति खुद की बात को काटते हुए चले जाते हैं। जो आदमी कुछ बोलता है, बस, किसी और को नीचे उतारने के लिए। उसमें कोई नियति नहीं है, कोई नियम नहीं है। वाद उसी को कहते हैं। शब्दों से लगे सही, यह वाद है। वह भी तत्कालिक। दूसरे शब्दों से लगेगा वह सही नहीं है।

वाद वही है जो तुम्हारे दिमाग को, बुद्धि को पकड़ता है, सीमा में बाँधता है और उसमें कोई नियम भी नहीं है। इसलिए कहते हैं अनिय तत्वाच्य। फिर करें क्या ?

**भक्ति शास्त्राणि मननीयानि तदुद्बोधक कर्माणि करणीयानि ॥**

भक्ति-शास्त्र को मनन करना, उस विधि को नहीं छोड़ना, उस विधि को जानना। उस शास्त्र को मानो, उसका मनन करो, सिफ़्र सुन लेने से नहीं होगा। यह एक-एक शब्द मन में बना रहे - तन्मया “मैं उसी का हूँ, वही सब कुछ हैं”। यतस्तदीयाः हम उनके हैं।

ये सब सूत्र कभी इधर-उधर स्मृति में आ जाये, तो उसी वक्त चेतना अपनी ऊँचाई पर पहुँच जाती है। तदुद्बोधक कर्माणि करणीयानि। ध्यान में बैठना। भक्ति शास्त्र का कर्म ध्यान है, सबका सम्मान करना, पूजा करना।

**सुख दुःख इच्छा लाभादित्यके काले प्रतीक्षमाणे क्षणार्थमपि  
व्यर्थं न नेयम् ॥**

सुख, दुःख, इच्छा, लाभ - ये चार परिस्थिति हैं, या मन का रुख है, इसको छोड़ना है। सुख का आना स्वाभाविक है। उसको पकड़ने जाओगे तो वह दुःख में परिणत हो जाता है। सुख यद्यपि तुम्हारा स्वभाव है, उसको पकड़कर बैठने की चेष्टा न करो, तब दुःख अपने आप छूट जाता है। यदि दुःख आये तो उस दुःख को मिटाने के ज्वर से पीड़ित मत हो जाओ। सुख से दूर होना स्वाभाविक है, मगर उससे विचलित मत हो।

त्याग से दुःख दूर होता है, समर्पण से दुःख दूर होता है।

दुःख को भी त्यागो। सुख को त्यागो, सुख बढ़ेगा; दुःख को त्यागो, दुःख खत्म हो जायेगा। इच्छा को छोड़ो, तो इच्छा पूरी हो जायेगी। लाभ को छोड़ो, तो लाभ ही लाभ है। लाभ के चिन्तन में जो रहता है उसको सबसे बड़ा नुकसान है। लाभ का चिन्तन लोभ बन जाता है। लाभ का चिन्तन आदमी को जड़ बना देता है; लाभ का चिन्तन आदमी को खुशी से वंचित कर देता है। तो सुख को छोड़ो, भय खत्म हो जायेगा। सुख को पकड़ने की चेष्टा भय में परिणत हो जाती है। सुख का त्याग माने क्या ? उदास होकर बैठ जाना नहीं। सुख का त्याग, माने सुख की जो पकड़ है न, वह उसका त्याग है। जो तुम्हारा स्वभाव है वह कम कैसे होगा ? सुख को त्यागो - सुख के पीछे पड़ते हो तब दुःखी हो जाते हो। हर दुःख इसका सूचक है कि तुम सुख के पीछे पड़े हो। सुख को त्यागो, फिर दुःख को भी त्यागो। क्योंकि दुःख को भी यदि पकड़ोगे, दुःख में भी सुख मिलने लगता है। यह विकृत सुख है। कई बार दुःखी व्यक्ति को बोलो, “अरे, यह कुछ भी नहीं है”, तो वे और ज्यादा दुःखी हो जाते हैं या नाराज़ हो जाते हैं कि आपने ऐसे कैसे कह दिया।

जब हम दुःख को पकड़ते हैं तब हम दुःख में भी सुख भोगने लगते हैं। समस्याओं से हम खुश हो जाते हैं। डाक्टर कहता है बीमारी नहीं है तो दुःख होता है, दूसरे डॉक्टर के पास जाते हैं। फिर वह ऐसी आदत बन जाती है, हम औरों को भी दुःखी कर देते हैं - जो व्यक्ति दुःख में सुख लेते हैं, वे औरों को दुःखी बनाते हैं। तो सुख को छोड़ा, दुःख को छोड़ो, और इच्छा को भी छोड़ो, इच्छा पकड़े रहने से एक ज्वर बना रहता है। जो तुम्हारे पास है उसका भी उपभोग नहीं कर सकते।

इच्छा माने 'कल', आनन्द माने 'अब'। इच्छा आनन्द का वादा करती है भविष्य में। वर्तमान में आनन्द है, इच्छा नहीं है।

एक प्रेमी, या मस्त व्यक्ति ही इच्छा से बाहर हो जाता है और मस्ती में आना हो तो इच्छा को समर्पण करो। अच्छा, यही प्रश्न है न, सांसारिक व्यक्ति इच्छा को कैसे छोड़े ? इच्छा उठती है अपने आप, है न ? कोई इच्छा नहीं उठे, यह भी दूसरी इच्छा हो गई। इच्छा उठने के बाद ही तुम्हें पता चलता है इच्छा उठ गई। तब ऐसा करो, इच्छा यदि उठे, उसका समर्पण कर दो।

"यह मेरी इच्छा है, यह आपको देता हूँ।"

इच्छा को त्याग करने से फिर मन शान्त होता है, इच्छा पूरी होती भी है। इच्छा पूरी तभी होती है जब उसको छोड़ते हैं; पकड़कर रखने से, पूरी होने पर भी, उसका रस नहीं लगता।

बुद्धिमान व्यक्ति सुख को भी, दुःख को भी, इच्छा को भी और लाभ को भी त्याग कर देते हैं। क्या लाभ होना है जब तुम खुद ही नुकसान में जा रहे हो ? जब पूरी दुनिया छोड़ कर जाना है, इस शरीर को मिट्टी में मिल जाना है, भस्म हो जाता है, तब लाभ किस चीज़ का, किसके लिए और किसको ?

लाभ का भी त्याग करें। इसका मतलब यह नहीं है कि आप नुकसान में धन्धा चलाओ। इसका यह अर्थ नहीं है कि दस रुपये की चीज़ आठ रुपये में बेच दो। तुम अपना व्यवहार जैसे चला रहे हो, वैसे चलाओ। मगर लोभ, लाभ का जो ज्वर है, उससे मुक्त हो जाओ और धर्म से चलाओ, बुद्धिमानी से चलाओ। धोखाबाजी करोगे एक दिन

चलेगा, दो दिन चलेगा, तीसरे दिन डूबोगे, दूकान बन्द हो जायेगी। लाभ की इच्छा छोड़ो, इसका मतलब यह नहीं है कि नुकसान की इच्छा करो। समझ रहे हैं न ? मन बड़ा जटिल है - कुछ भी सुनते हैं, उसको अपने मुताबिक, घुमा-फिराकर अपने मतलब की बात निकाल लेते हैं।

काले प्रतीक्षमाणे जल्दी बाजी नहीं करो, काल की प्रतीक्षा करो। सब का समय है। यह नहीं “मुझे ध्यान करना है, मुझे आज ही साक्षात्कार करना है” और बैठ गये घन्टों, १०-१० घन्टे, १२ घन्टे, ध्यान में बैठ गये ... भ्रम हो गया। शरीर तैयार नहीं और घन्टों बैठकर करने लगे, किताबें पढ़ लीं, क्रिया-प्राणायाम सब करने लगे, बिना समझे, बिना सीखे, मंत्र-जाप करने लगे, लगातार तो दिमाग में फिर भ्रम पैदा हो गया। यह नहीं करना। जितना बताया गया है, किसी शिक्षक से जो सीखा, कुछ उपाय दिया, उसका समय भी बताया, उसका नियम भी बताया; उस नियम-विधि के अनुकूल चलो और काल की प्रतीक्षा करो। काले प्रतीक्षमाणे किसी भी घड़ी भगवान तेरे दरवाजे पर आ सकते हैं। जब हम बहुत छोटे थे हमारी दादी-माँ हर शाम को सूर्यास्त से पहले एक आसन बिछाती थी, उसके सामने रँगोली कर के, दीया जलाती थी - कहती थी भगवान आ जायेंगे, किसी भी दिन आ सकते हैं। और वह रोज़ प्रतीक्षा करती थी। फिर जो भी आयें, उनको फल देना, भोजन कराना, कपड़े देना .... लोगों को मज़ाक लगता था, मगर वह भोलापन, उस चेतना में विश्वास गहरा होता है - पता नहीं किस रूप में आ जायेंगे भगवान।

कहीं भी जीवन में कोई जड़ता न आ जाये। प्रतीक्षा जड़ता को

विनष्ट कर देती है। प्रतीक्षा तुमको सजग बनाती है। काले प्रतीक्षमाणे  
क्षणार्धमपि व्यर्थं न नेयम् ।

आधा क्षण भी तुम व्यर्थ मत गँवाना। आल्तू-फाल्तू बातों में वक्त  
मत गँवाओ। भक्त कभी समय को खराब नहीं करता। वह सब के लिए  
उपयोगी बनता है। प्रेम में होकर फिर वह मस्त रहता है, वातावरण को  
शुद्ध करता है। जब हम प्रेम में होते हैं, हमारे वातावरण में एक  
सामरस पैदा हो जाता है, एक शान्ति फैल जाती है। जब कोई व्यक्ति  
नाराज़ होता है, दुःखी होता है, वातावरण में उस दुःख के कण होते ही  
हैं। और प्रेमी व्यक्ति उन सब को धो देता है, उन सब को साफ कर देता  
है। वातावरण फिर शुद्ध, शान्तिपूर्ण और प्रेमपूर्वक हो जाता है। क्षणार्धमपि  
व्यर्थं न नेयम् व्यर्थं नहीं करना।

जय गुरुदेव

# **ऋषियों की दृष्टि - प्रेम के रंग और ढंग**

## ऋषियों की दृष्टि - प्रेम के रंग और ढंग

भगवान् यदि सच्चिदानन्द है, और हमारे भीतर है, उसका प्रस्फुरण हमारे में भी होना है। यह लक्षण है। हम सच्चिदानन्द के करीब होते, तो हम भी आनन्दित हो जाते। और आनन्दित नहीं हैं, फिर तो न चेतना है, न सत्य, न आनन्द; तब जड़ता पकड़ लेती है। भक्ति के रस में जड़ भी चेतन हो उठता है, उसमें भी आनन्द की झलक आ जाती है।

पिछले सूत्र में कहा गया सुख दुःख इच्छा लाभदित्यके काले प्रतीक्षमाणे क्षणार्धमपि व्यर्थं न नेयम्।

सुख को छोड़ो। सुख की पकड़ सुख को कम कर देती है। सुख को त्यागने से सुख अधिक होता है, कम नहीं होता। क्यों? सुख हमारा स्वभाव है, सुख को पकड़ने की जो चेष्टा है वह सुख को दुःख में परिणत कर देती है। कोई भी प्राणी सुख से अछूता नहीं रहा। कभी न कभी, हर प्राणी, सुख का अनुभव कर चुका है। पर जब सुख अनुभव करते हैं, हम उस सुख को पकड़ने की चेष्टा करते हैं, और उस पकड़ से भय, दुःख, यह सब सिलसिला शुरू हो जाता है। तो कहते हैं सुख को छोड़ो, त्याग करो, तब सुख बढ़ेगा। दुःख को छोड़ो तो दुःख घट

जायेगा। सुख का भी त्याग करना, दुःख का भी त्याग करना; इच्छा का त्याग करना, तब इच्छा पूरी होती है। इच्छा अपने आप उठती है न? उसको त्याग देना, समर्पण कर देना। समर्पण करते ही इच्छा पूरी होने लगती है - यदि वह श्रेयस्कर हो। लाभ की चिन्ता छोड़ने से परम लाभ मिल जाता है। काले प्रतीक्ष्यमाणे - प्रतीक्षा में हर क्षण बने रहो, व्यर्थ नहीं गँवाओ। फिर कहते हैं, यह तो अपने लिए। अब इसको बाहर की दुनिया में कैसे अमल करें? तो कहते हैं -

### अहिंसा सत्य शौच दया आस्तिक्यादि चारित्र्याणि परिपालनीयानि ॥

यद्यपि भक्ति में तुम सभी नियम के ऊपर उठ जाते हो, फिर भी अहिंसा का पालन ज़रूरी है। वैसे कोई भक्त हिंसा कर ही नहीं सकता - असम्भव है। फिर भी यह चरित्र जो होता है, उसका पालन स्वाभाविक है, उसपर ध्यान देना। सत्य - झूठ बोलने से दुःख ही मिलता है। यदि तुम सुख की इच्छा छोड़ते हो, यदि तुम सुख का त्याग करते हो तो झूठ अपने आप छूट जाता है। झूठ व्यक्ति इसीलिए बोलता है क्योंकि सुख की अभिलाषा है - कहीं सुख ज्यादा मिलेगा मुझे - इस तरह का भ्रम है। किसी प्राणी के हित के लिए झूठ बोलें, वह ठीक है, मगर अपने सुख की इच्छा के लिए झूठ बोलें, वह झूठ धर्म नहीं। तो अहिंसा, सत्य और शौच। स्वच्छता चाहिए। कई बार लोग सोचते हैं, हम भक्त हैं, माने हम नियमों से परे हैं, जैसे-तैसे रहें। वे समझते हैं उदासीन व्यक्ति, माने गन्दे कपड़े पहने रहें, खायें-पीयें नहीं - अवधूत का लक्षण। कुछ तो अवधूत के लक्षण में स्वाभाविक हो गये मगर बहुत लोग उसकी नकल भी करते हैं, गन्दे-गन्दे रहना .....। शौच पर ध्यान दें; दोनों

तरह का शौच - बाहर का शौच और आन्तरिक शौच। शुद्धता। साफ रहना। स्वच्छता बनाये रखना। दया आस्तिक्यादि चारित्र्याणि परिपालनीयानि। यह जो चरित्र है, इसका परिपालन करना चाहिए। यद्यपि आप इन चरित्रों से ऊपर हो, फिर भी इनकी मर्यादा बनाकर रखो, यह कहते हैं नारद मुनि।

**सर्वदा सर्वभावेन निश्चन्तैः भगवानेव भजनीयः ॥**

जीवन एक ही भाव की धारा नहीं है। जीवन में नव रस है। अलग-अलग भावों की धारा, प्रवाह, जीवन में चलती है और हर भाव को उसके प्रति लगाना। जब भाव जगता है तब चिन्ता नहीं होती। चिन्ता विचारों से होती है, भाव हृदय की वाणी है। तो दिमाग से दिल की ओर जब हम चलते हैं तब चिन्ता मिट जाती है।

**निश्चन्तैः भगवानेव भजनीयः भाव विभोर होने पर चिन्ता शान्त होती है और यह करने लायक है, यह करना चाहिए। बार-बार मन को उधर लगाओ जो शुद्ध चेतना है, भगवान की ओर लगाओ।**

**स कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवत्यनुभावयति च भक्तान् ॥**

कीर्तन माने क्या ? आर्तन माने रोना। कैसे ? जैसे बच्चे रोते हैं। आपने देखा है, छः महीने, आठ महीने का बच्चा जब रोता है, वह पूरे शरीर से रोता है, सिर्फ आँखों से नहीं। आँखों से पानी निकलता है मगर पूरे शरीर में आक्रन्दित होता है। वह रोना शरीर के कण-कण से निकलता है। कीर्तन माने वही है - जो तुम्हारे शरीर के, सत्ता के कण-कण से निकले। जिसमें तुम पूरी तरह से संलग्न हो जाते हो गाते-गाते - वह कीर्तन है। जब हम सोचते हैं, हर व्यक्ति अलग-अलग सोचते हैं।

हर दिमाग में अलग ही विचार उठता है। बहुत मुश्किल से हर दिमाग में एक ही विचार होता है - कभी-कभी होता है, ऐसा नहीं कि होता ही नहीं। मगर जब हम कीर्तन करते हैं, भजन गाते हैं, एक ही शब्द हमारी चेतना की हर परत से गूँज उठता है। एक ही शब्द सबके मन में गूँज उठता है। और वह एक शब्द सबके मन को भी एक स्तर पर जोड़ देता है। और जब हम संस्कृत की, या पुरानी नामावली, जो बहुत पुरानी है; ५-६ हज़ार, १० हज़ार वर्ष पुरानी जो हमारी चेतना है, उसकी परत है, मन की परत है, उस परत की गहराई में भी वह गूँज पहुँच जाती है। तो जैसे तुम ॐ नमः शिवाय, राधे गोविन्द, कुछ भी गाते हो, हमारी चेतना की हर परत से वह गूँज उठती है। मन के हर स्तर पर, चेतना के हर स्तर पर, हर परत में उस भजन की गूँज उठती है। कीर्तन करने से बहुत शीघ्र ही वह अनुभव में आ जाता है, वह चेतना जो व्याप्त है, अखण्ड है, अनन्त है और प्रिय है।

### त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी, भक्तिरेव गरीयसी ॥

तीन सत्यों में भक्ति ही प्रधान है; उसी की गरिमा है, उसी की महिमा है। तीन सत्य क्या है ? ज्ञान, कर्म और भक्ति। यह तीनों अलग-अलग नहीं हैं, जुड़े हुए हैं। भक्ति से ज्ञान होता है, ज्ञान से भक्ति होती है। और भक्ति होने पर कर्म होता है, सत्कर्म। और ज्ञान से ही तो कर्म भी चलता है, अज्ञान में तो कोई कर्म कर भी नहीं सकता। तीन सत्य, यदि मानोगे, तीन तो है ही नहीं, सत्य तो एक है, लेकिन यदि तुम मानोगे तो तुम भक्ति को ही पकड़ना। भक्ति के बगैर तुम कर्म करोगे तो वह कर्म नहीं रचेगा, वह सत्कर्म हो ही नहीं सकता। जब दिल से कोई काम नहीं करते हो, तो उस काम का कोई असर नहीं होता। अच्छा

असर तो नहीं होता, बुरा असर हो सकता है। और लगाव नहीं है, प्रेम नहीं है, तो कुछ सीखने का मन भी कहाँ होगा ? जान भी क्या सकते हो? कुछ जान पाओगे ? उसमें लगाव ही नहीं है। है कि नहीं ? रुचि होने से तो जानने का मन करता है न ? यदि प्रेम न हो, तो ज्ञान होगा कैसे ? तो यदि तुम तीन सत्य को मानते हो तो भक्ति ही श्रेष्ठ है क्योंकि वही आधार है, वही फल रूप है। ज्ञान का भी आधार भक्ति है, कर्म का भी आधार भक्ति है और ज्ञान का फल भी भक्ति है, कर्म का फल भी भक्ति है। कोई भी काम करने के बाद तुम्हें तृप्ति, संतोष, आनन्द, प्रेम न मिले तो वह कर्म बेकार है। कर्म का उद्देश्य क्या है ? कोई भी काम करते हो, उसका लक्ष्य क्या है ? तृप्ति। आनन्द। और आनन्द और तृप्ति भक्ति के सिवा कैसे होगी ? इसीलिए कहते हैं कि हर कर्म का लक्ष्य है भक्ति। और हर ज्ञान का लक्ष्य क्या है ? वह भी तो तृप्ति है। यदि ज्ञान तुमको अतृप्ति करके छोड़ दे, फिर वह ज्ञान ही नहीं। किसी जानकारी से तुम क्या चाहते हो ? उससे लाभ क्या है ? एक तृप्ति। खुशी। वह खुशी, तृप्ति, भक्ति का स्वरूप है। इसीलिए कहते हैं तीन सत्यों में भक्ति ही श्रेष्ठ है। फिर भी मैं यहाँ याद दिलाना चाहता हूँ, भक्ति माने यह नहीं कि सिर्फ बैठकर भजन करो, मन्दिर में जाकर माथा टेको, यही भक्ति नहीं। भक्ति में चार वर्ण है - भ, क, त और इ।

**भ** माने भरन-पोषण। जिससे भरन पोषण होता है, वह भक्ति है।

**क** माने सुख दायक - जो सुख प्रदान करती है, जो ज्ञान का माध्यम है।

**त** जिससे तारण हो जाता है, जिससे तुम तर जाते हो।

**इ** माने शक्ति सम्पन्न। वही शक्ति है। 'इ' कार भक्ति का सूचक है।

भक्ति वही है जिससे तुम्हारा भरन-पोषण होता है, जिससे तुम्हें ज्ञान की प्राप्ति होती है और सुख का अनुभव होता है। जिससे तुम तर जाते हो, मुसीबतों से, और जो सबसे बड़ी शक्ति है। इससे बड़ी कोई ताकत नहीं है। अपने स्वरूप में बैठ जाना, शान्त हो जाना, भक्ति है। हम कई बार सोचते हैं, “हम कैसे शरणागत हों, पूर्ण शरणागत कैसे हो जायें?” शरणागति कोई कृत्य नहीं है, शरणागति तुम्हारा स्वभाव है, तुम्हारा स्वरूप है। जब तुम और चीजों को जिनको तुम पकड़े हुए हो, उनको छोड़ते हो, शान्त होते हो, अपने में ध्यानस्थ होते हो, तब तुम शरणागत हो ही। शरणागति के बिना ध्यान हो नहीं सकता। और ध्यान यदि होता है, तो समझ लो कि शरणागति हो गई है। किसी न किसी मात्रा में तुम शरण में हो गये हो। जब तक भीतर तुम तरल नहीं होते हो, तब तक न ध्यान होगा न शरणागति होगी। तुम्हारे भीतर जो कड़कपन है, यह तुम्हें न ध्यान, न ज्ञान, न शान्ति, न आनन्द, न मस्ती, न जीवन में कुछ प्रगति करने देता है। पिघल जाओ। ढीला छोड़ दो। शान्त हो जाओ। इस क्षण को देखो। तुम कुछ भी नहीं हो, यह जानो। एक नहीं, कई तरीके बताये गये, किसी न किसी तरह तुम यह जान लो, तुम ही शरणागत हो। तुम ही शरणागति हो।

अगला सूत्र है -

गुणमाहात्म्यासक्ति रूपासक्ति पूजासक्ति  
 स्मरणासक्ति दार्श्यासक्ति सरव्यासक्ति वात्सल्यासक्ति  
 कग्जासक्ति आत्मनिवेदनासक्ति तम्भयतासक्ति  
 परमविरहासक्ति रूपा एकधा अपि एकादशधा भवति ॥

भक्ति एक होने पर भी उसके ग्यारह रूप बताये हैं। ग्यारह तरह से तुम इस भक्ति को अनुभव कर सकते हो। गुणमाहात्म्यासक्ति गुणमहात्म्य को गाते रहना, किसी का गुण-गान करना प्रेम का सूचक है। उसमें आसक्त होना प्रेम का सूचक है। जिसको तुम बहुत प्यार करते हो, उनके बारे में तुम गाते रहते हो, और देखो, उनके बारे में बोलते-बोलते, गाते-गाते, उनका गुण-गान करते-करते, तुम्हारी ही चेतना एक बहुत सुन्दर रूप में परिणत हो जाती है। तुम प्रयोग करके देखना। किसी की निन्दा करते जाओ, सिर्फ बैठकर दो-तीन घन्टे किसी की निन्दा करो - फिर तुम्हारे भीतर जरा झाँककर देखो, कैसा लगता है भीतर मन में, चेतना में क्या हलचल होती है। असह्य हो जाता है, अच्छा नहीं लगता। निन्दा के वह गुण हमारे भीतर, हमारी चेतना में अंकुरित हो जाते हैं। तो गुण-गान करना। चाहे वे अच्छे हों या न हों, गुणगान करने वालों के लिए बहुत अच्छा है। चाहे वह लोभे, मगर तुम तो तर जाओगे। तुम जिसका गुणगान करोगे, वह आदमी अपने अहंकार में चढ़ सकता है, मगर जिसने गुणगान किया, वह कभी नीचे नहीं गिर सकता, क्योंकि गुणगान करना, प्रशंसा करना दैवी सम्पत्ति है, दैवी गुण है। गुणगान करना ही भक्ति है - एक तरह की भक्ति, चाहे राम का करो, कृष्ण का करो, गुरु का करो - किसी का करो - किसी के गुणगान में जब तुम लग जाते हो, वह गुणगान ही तुमको इतनी शक्ति प्रदान कर देता है, कभी गौर किया है ? कभी अनुभव में आई है यह बात ? किसी प्रिय के बारे में बात करते चले जाओ पाँच-छः घन्टे, तो भी थकावट नहीं होगी; वही यदि एक घन्टे निन्दा करोगे तो देखो, फिर चार घन्टे तक थकावट नहीं उतरती।

**रूपासक्ति** - उनके रूप में आसक्त हो जाना। यह सारा संसार नाम और रूप का है। यहाँ जो भी रूप है, सब उसी का रूप है। इन सब रूपों में उनको देखते जाओ। पानी में भी, पहाड़ में भी, चिड़िया में भी, फूल में भी, खेत में भी, कुएँ में भी, सागर में भी, वही है, यह सब उसी का रूप है। रूप में आसक्त होना। हर रूप को गौर से, प्रेम-पूर्वक देखना। अकसर हम समझते हैं रूपासक्ति काम को जगाती है। ऐसा नहीं है। रूप को सम्मान नहीं दिया गया, तब काम जागता है। एक अलग दृष्टि है। तुम हर रूप को सम्मान दोगे तो जिसको तुम सम्मान दोगे, उसको तुम हड़पना नहीं चाहोगे। काम वासना माने हड़पना; सम्मान माने पूजा करना, समर्पित होना। सम्मान में समर्पण का भाव है। रूपासक्ति - जो हमको बहुत प्रिय हैं, उनके रूप को पूजना, उसमें आसक्त रहना। उससे बढ़कर कोई और रूप, कोई और दृश्य हमें जचता ही नहीं। सत्य जितना सुन्दर है उससे सुन्दर कोई और चीज़ हो ही नहीं सकती और शिव जितने सुन्दर हैं उतना सुन्दर और कुछ है ही नहीं। शिव कहो चाहे सौन्दर्य कहो, एक ही है। सत्यम् शिवम् सुन्दरम् कहा है - यह तीन बार एक ही शब्द की पुनरुक्ति है। शिव का दूसरा नाम कहा है सुन्दरेश्वर - सुन्दरता का मालिक। सौन्दर्य का अनुभव कैसे होता है हमें, ज़रा देखो न। तुम्हारे भीतर से एक शक्ति, एक लहर उठती है - अहा ! बहुत सुन्दर है। किसी भी व्यक्ति या वस्तु को देख कर, दृश्य को देखकर, मन में एक शक्ति की ऊर्जा ऊपर उठती है - अहा ! सुन्दर है !

और तुम उस चित्र को, व्यक्ति को, अपने काबू में ले लोगे तो उसमें सुन्दरता खो जाती है क्योंकि शक्ति तो सौन्दर्य थी, वस्तु नहीं।

सौन्दर्य वस्तु में नहीं, चेतना में सौन्दर्य है, शक्ति में सौन्दर्य है। हमारे भीतर जो सौन्दर्य की लहर उठती है - आदि शंकराचार्य ने कहा “सौन्दर्य लहर” - चेतना की जो लहर है, वह सौन्दर्यपूर्ण है। दुनिया में कहीं और सत्य को सुन्दर नहीं बताया गया, सौन्दर्य को प्रधानता दिया ही नहीं कहीं भी, सिवाय इस वेद भूमि भारत में। दुनिया में कहीं और, किसी धर्म-ग्रन्थ में सौन्दर्य को इतना महत्व नहीं दिया। सौन्दर्य क्या है ? चेतना का ही लक्षण है। जहाँ चेतना है, वहीं सुन्दरता है। चेतना के बगैर जितना भी सुन्दर कोई शरीर हो, वह तो शव है और शव को कौन प्रेम करता है ? और चेतना कम हो जाती है, तो वे शव के समान हो जाते हैं। रूपासक्ति - सौन्दर्य में उनको देखना है और उनमें सभी सौन्दर्य को देखना।

**पूजासक्ति** - सम्मान करने की आसक्ति, पूजा में आसक्त हो जाना। पूजा माने क्या ? फिर-फिर, पुनः पुनः, जन्म लेना; दुबारा जन्म देना, वह पूजा है। जो कर चुके हैं, उसको दुबारा करना पूजा है। भगवान कर चुके हैं तुम्हारी पूजा, उसको तुम दोहराते हो, इसीलिए उसको पूजा कहते हैं। भगवान तुम्हें पानी दे रहे हैं, अर्घ्य दे रहे हैं तुम्हें, अन्न उगाकर तुम्हें भोजन करा रहे हैं, फल उगा रहे हैं, फूल उगा रहे हैं, चाँद और सूरज को लेकर तुम्हारी आरती उतार रहे हैं और जो वे कर रहे हैं, उसकी नकल तुम करते हो, वही पूजा है। पूजा सिर्फ एक कृत्य नहीं है, वह एक भाव है। दम-दम में होनी चाहिए पूजा। हर साँस में पूजा, यह पूजा की पराकाष्ठा है। प्रेम ही पूजा है। भाव ही पूजा है। भगवान भाव के भूखे हैं। हम पूजा को बहुत विकृत कर चुके हैं, सोचते हैं पूजा माने बस मन्दिर में जाओ, मूर्ति के चेहरे में पेड़े घुसाओ। अब

देखो, माताएँ जाती हैं मन्दिरों में - सुन्दर-सुन्दर संगमरमर की मूर्ति, पता नहीं कितने पेड़े खा जाती हैं, उनका नाक-मुँह सब एक हो जाता है। कुछ दिन के बाद कुछ नहीं दिखता। मगर उनकी श्रद्धा है, माताएँ करतीं हैं। पर जो पढ़े-लिखे लोग हैं, वे भी यही करते लगते हैं क्योंकि भय से करते हैं - “हनुमानजी के मन्दिर में चना नहीं चढ़ायें, तो कहीं हनुमानजी नाराज़ नहीं हो जायें”। घर में भी यही करते हो - ४-५ चित्र रखते हो, एक फूल है तो तोड़-तोड़ कर सब जगह रख दिया। अरे, वहाँ नहीं रखा तो कहीं कृष्णजी नाराज़ नहीं हो जायें, संतोषी माता कहीं हम पर नाराज़ न हो जायें। हम भगवान को अपने से भी नीचे स्तर पर बैठा देते हैं। अरे, तुम नहीं बिगड़ोगे, तुमको नहीं दिया, तुम्हारे बगल में कोई बैठे हैं, उनको एक फूल देने से क्या तुम बिगड़ जाओगे ? यदि तुम समझदार हो, तुम बोलोगे ठीक है एक ही फूलमाला है, उनको चढ़ा दिया, क्या फ़र्क पड़ता है। और तुमसे भी नासमझ हो गये भगवान ? हम इस भय से पूजा करते हैं न, या लोभ से। तिजोरी को देख-देखकर पूजा करते हैं, क्योंकि वे तो पहरेदार हैं न तिजोरी के। देवताओं को तिजोरी का पहरेदार बना दिया। उनको धूस देना पड़ता है, ज़रा सा सँभालकर देखो, कहीं कम न पड़ जाये। बैंक बैलेन्स नीचे न जाये। दीवाली पर जो भी पूजा करते हैं, इसीलिए करते हैं। काँपते-काँपते करते हैं पूजा, या लोभ से। धन्यवाद का भाव कम देखने को मिलता है। धन्यभागी हो जाओ। जो कुछ भी तुमने पाया है उसके लिए धन्यवाद करो, वह तुम्हारे जीवन में सबसे बड़ी पूजा है। जिस क्षण भी तुम धन्य महसूस करते हो, समझ लो वह सबसे सच्ची पूजा है।

और इसी तरह स्मरणासक्ति - स्मरण में आसक्ति रखना,

निरन्तर वह स्मरण हमारे में है। रूपासक्ति से आगे पूजासक्ति है। और वह पूजा इतनी अन्तरमुख हो जाये, तब वह पूजाशक्ति ही स्मरण शक्ति में बदल जाती है। कृत्य से रूप बाहर रहा, रूप में तुम आसक्त रहे, फिर पूजा में, उससे ज़रा सूक्ष्म, चेतना के कृत्य में आसक्त हुए और इससे भी सूक्ष्म - स्मरण, स्मरणासक्ति। हर रूपासक्ति पूजासक्ति में बदलनी चाहिए, हर पूजासक्ति चलते-चलते स्मरणासक्ति हो जाती है। फिर दास्यासक्ति। स्मरण करने की कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ती। जिसमें लगाव है, जब प्रेम है, तो अपने आप याद आ जाता है। जिससे इतना लगाव हुआ - उठते ही वही याद, खाना खाते हुए वही याद, बैठते, उठते, सपने में भी - यह स्मरणासक्ति है।

स्मरणासक्ति के आगे दास्या सक्ति। अब यह नहीं, “हम तो स्मरण करते हैं और हम कुछ करेंगे-वरेंगे नहीं, हम तो भगवान को बैठकर याद करते हैं - उनका कोई काम नहीं करेंगे। घर का कोई काम नहीं करेंगे। यह कोई स्मरण नहीं है। हर स्मरणासक्ति में फिर उनके काम में उतरना पड़ेगा। भगवान के काम में हम उतरते हैं तो उसको कहते हैं दास्यासक्ति। “मैं उनका दास हूँ, वे मालिक हैं।” और वे जानते हैं हमारे लिए क्या अच्छा है, क्या नहीं, हम सिर्फ उनका काम करते हैं। बस, “मेरे को यह करने के लिए कहा है, मैं यह काम करूँ।” इस तरह भावना को कृत्य में उतारने की कला है दास्यासक्ति। यदि भगवान चाहते कि तुम कुछ नहीं करो, सिर्फ स्मरण ही करो, तुम्हें गोल पत्थर बनाकर रख देते कहीं हिमालय के ऊपर। तुम्हें आँख दिया है, नाक दिया है, कान दिया है, स्मरण शक्ति दी गई है तुमको, बोलने की शक्ति, सोचने की शक्ति - ये सब तरह की शक्ति तुम्हें दी गई है, क्यों? खाली

बैठने के लिए नहीं। जो शक्ति तुम्हें दी गई है उसको इस्तेमाल करो, उसको उपयोग में ले आओ। उसका उपयोग नहीं करोगे तो दुबारा तुम्हें वह शक्ति नहीं मिलेगी। ये सब शक्ति तुम्हें मिली है, इसको कृत्य में उपयोग करो और वह कृत्य तुम तभी करोगे जब तुम दास्य भाव अपने में जगाओगे। “मैं उनका दास हूँ, उन्होंने किसी काम से मुझे यहाँ रखा है। मैं उनका काम करता हूँ।” इस भाव में उतरना - दास्यासक्ति।

**सख्यासक्ति** - तुम उनके सखा हो। सिर्फ दास बनना काफ़ी नहीं है। दास भाव में ज़रा भय होता है, ज़रा सा। पता नहीं मालिक क्या कहेंगे, नाराज़ होंगे। दासता में ज़रा दूरी है, वह अलग है, मैं अलग हूँ। सख्य भाव में वह दूरी मिट जाती है। प्रेम अपने उच्च शिखर पर पहुँच जाता है। सखा के रूप में देखना प्रभु को। अपना कर के मानो। तभी उनका सब गुण तुममें उतर सकता है, तभी भक्ति पूर्ण हो सकती है, तभी तुम जुड़ पाओगे उनके साथ। उनको सिर्फ ऊपर रखोगे, और तुम नीचे ही रहोगे, तो फिर ज़रा दूरी, एक कन्दर बीच में आ जायेगा। तो उनको सखा मानो - सख्यासक्ति। सिर्फ सखा भाव हो तो झगड़े हो जाते हैं; सिर्फ दास भाव हो, तो भय पैदा हो जाता है। दोनों चाहिए - दास्यासक्ति हो, सख्यासक्ति हो। दास्यासक्ति से झगड़े मिट जायेंगे और सख्यासक्ति से भय दूर हो जाता है। तब प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है।

**वात्सल्यासक्ति** - कोई भगवान को बच्चे के रूप में देखते हैं। उनको बालक मानो। भगवान की माँ बन जाओ, भगवान के पिता बन जाओ। बालकृष्ण की पूजा इस देश में बहुत मशहूर है। बालगोपाल ही रखते हैं घर पर। और कई लोग बालगोपाल को यह सब कराते हैं -

रोज झूले में झूलाते हैं, सुलाते हैं, नहलाते हैं। आप बच्चों के साथ कुछ भी कर रहे हों, उस वक्त यह भाव रख सकते हैं, वात्सल्य-प्रेम। वात्सल्य में आसक्त हो जाना। यह सारा संसार और इसमें जितने भी जीव-जन्म हैं, उन सब के प्रति वात्सल्य भाव आ जाता है मन में। जिधर भी नज़र पड़े उधर उनको बालक के रूप में देखो। तुम सिर्फ़ सख्त के रूप में देखोगे तो दोष नज़र आता है, मगर बालक के रूप में देखोगे तो वह दोष मिट जाता है। क्योंकि बालक कुछ भी करे, वह खेल है, लीला है, उसमें दोष नहीं है। सख्त कुछ करे जो हम को नहीं पसन्द, फिर वह दोष है। तो सख्यासक्ति से आगे, तब भी यदि भक्ति पूर्ण नहीं होती हो, तो वात्सल्या-सक्ति में उतरो - उसको बालक के रूप में देखो, उस को खेल के रूप में देखो। तब भी तुम भक्ति को अपने भीतर बचा लोगे।

कान्तासक्ति - कान्ता के रूप में देखो। जीवन में भागीदार के रूप में देखो। कान्ता माने क्या ? जिससे कान्ति मिलती है, जिससे तुम्हारे भीतर प्रकाश मिलता है। जिसको देखने से, जिसके संग होने से तुम चमक उठते हो, वही कान्ता है। कान्ता माने जो तुम्हारी कान्ति को बढ़ावा दे। यदि कोई तुम्हारी कान्ति को घटा दे, तो वह कान्ता नहीं है। जो हर तरह से तुम्हारी मदद करे। न केवल भगवान् तुम्हारी मदद करें, तुम भी उनकी मदद कर रहे हो। तुम उन्हीं का काम कर रहे हो। उन्हीं की सृष्टि की तुम देख-भाल कर रहे हो। जो तुम्हारा संसार है, अड़ोस-पड़ोस है, घर के लोग हैं, सब उन्हीं के हैं न ? और उनकी देखभाल करने के लिए तुमको वहाँ रखा गया है। यह कान्तासक्ति की विशेषता है - बड़ा सूक्ष्म है और सुन्दर भी।

आत्मनिवेदनासक्ति - फिर अपनी आत्मा को निवेदन करो -

नैवेद्य बना दो। यह बहुत स्वाभाविक है, निवेदन करना, खुद को निवेदन, नैवेद्य के रूप में समर्पण करना। जब हम बहुत छोटे थे, पूजा के वक्त एक बार हम भूल गये प्रसाद रखकर; खोजने पर प्रसाद मिला नहीं, अब आरती करनी है, उससे पहले भोग चढ़ाना है - अपने आप को निवेदित कर दिया। “स्वयं को चढ़ा देता हूँ - नैवेद्य मैं ही हूँ”। आत्म निवेदनासक्ति - अपने में आसक्ति, समर्पण हो जाने की, मिटने की। जो कुछ भी अपना लगता है, वह सब उसी का है, यदि लगे कुछ मेरा है, यह तन मेरा है, यह बुद्धि मेरी है - तो यह सब-कुछ को उसका समझकर समर्पण कर देना। यह तो एक भ्रम है ना, मन का भ्रम है कि मैं अलग हूँ - अलग तो है ही नहीं। जो है, सो मैं ही हूँ। मेरे सिवा तो कुछ है ही नहीं। मगर यदि लगे कि कुछ है, ऐसा लगे कि मैं अलग हूँ - मन की एक हल्की सी परत में कुछ लगे, तो उस भाव को समर्पण कर देना, यह आत्मनिवेदन है।

तन्मयतासक्ति - उस मय में हो जाना, यह समझना उनमें और मुझमें कोई भेद नहीं है। तन्मय। जो वो हैं, सो मैं हूँ - ‘सो हम’। वही मैं। तन्मयतासक्ति - इसमें आसक्त हो जाना, मस्त हो जाना। हम भेद को कल्पित करते हैं, ऐसा न करके अभेद भाव में हम आ जावें, इस भक्ति को कहते हैं तन्मयतासक्ति। मगर यह सीढ़ी है - आगे की सीढ़ी। फिर ?

यदि मान लो ऐसा नहीं होता है, मुश्किल लगता है, तब कहते हैं परम विरहासक्ति। तब तुम भेद जो लगता है भीतर, जो विरह लगता है भीतर, उसमें ही मौज करो। उस विरह में ही आँसू बहाओ, तरसो,

प्यासे हो जाओ उसके, इस विरह को गहराई से अनुभव करो, जलो उस विरह में, जलते-जलते तुम सोना हो जाओ। परम विरह में भी प्रेम ही है। प्रेम न होता तो विरह कैसे होता ? और विरह नहीं होगा तो प्रेम कैसे होगा? विरह में जलना भी प्रेम है - यह भी भक्ति है, ग्यारहवीं तरह की भक्ति। एकादशधाभक्ति - एक होने पर भी ग्यारह तरह से इसको देखो।

**इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्भयाः प्रकमताः**

**कुमार व्यास शुक शाण्डिल्य गर्व विष्णु कौण्डिन्य**

**शेषोद्धवारुणि बलि हनुमद् विभीषणादयो भक्त्याचार्याः ॥**

राधा विरह का सूचक है और कृष्ण प्रेम का। विरह के बिना प्रेम नहीं और प्रेम के बिना विरह नहीं। तो राधेश्याम माने विरह और प्रेम की जोड़ी। विरह के न होने से प्रेम द्वेष में परिणत हो जाता है। चौबीस घन्टे यदि तुम किसी के साथ रहते हो, और ज़रा सा भी फासला नहीं रखते हो विरह अनुभव करने का, तब झगड़े ही झगड़े। पुराने ऋषि-मुनियों ने इन बातों को ध्यान में रखते हुए कहा कि ज्येष्ठ मास में सास और बहू एक ही घर में नहीं रह सकते, यह पद्धति बनी। कहीं सावन है, कहीं आषाढ़। बहू अपनी माँ के यहाँ चली जाती थी, तब चिट्ठियाँ, विरह के पत्र, यह सब चलता था। इन-इन दिनों में साथ रहो, इन-इन दिनों में साथ नहीं रहना, ये सब नियम बना दिये थे। एक लौकिक स्तर पर भी ऐसा नियम बनायें, क्योंकि यह सत्य है। जो सत्य है वह सिर्फ़ एक स्तर पर नहीं रहता। उसका प्रभाव जीवन के हर परत पर झलकता है। इति एवम् वदन्ति। ऐसा कहते हैं, कौन ? जनजल्पनिर्भयाः प्रेमी हमेशा बेशर्म होता है। वह परवाह नहीं करता है कि लोग क्या कहेंगे,

क्या सोचेंगे। यदि व्यक्ति हमेशा बैठकर सोचता रहे दूसरे व्यक्ति उसके बारे में क्या सोचते हैं, क्या कहते हैं, तो वह प्रेम से दूर हो जाता है। हाँ, थोड़ा बहुत देखना पड़ता है। क्यों देखना पड़ता है? ताकि इससे औरों का कल्याण हो, इस दृष्टि से। मगर अपने लिए नहीं सोचते। प्रेमी बेशर्म ही हैं। जनजल्पनिर्भयाः लोगों के कथन, या उनकी धमकी से वे डरने वाले नहीं। प्रेमी हमेशा निर्भय होता है। जो बेशर्म होता है, उसमें कोई भय हो नहीं सकता। भय उसी में होता है जो शर्माता है। प्रेम में भय नहीं होना चाहिए मगर उसकी अभिव्यक्ति में ज़रा सोचना चाहिए।

**एकमताः** प्रेमी में दो मत हुआ नहीं कभी। प्रेमी एक मत के हैं। ज्ञानी में बहुत मत हैं। क्योंकि हर एक का ज्ञान अलग-अलग है। ज्ञानी बहुमति होता है, प्रेमी हमेशा एकमताः। कहते हैं अठारह आचार्य हुए हैं भक्ति के, उन सब का एक ही मत है। और वे कौन-कौन हैं? सनत कुमार, व्यास, शुकदेव, शाण्डिल्य, गर्ग, विष्णु, कौण्डन्य, शेष, उद्धव, आरुणि, बलि, हनुमद, विभीषणादि आचार्य। इनमें नारद भी हैं, गर्ग भी हैं, ये सब आचार्य जो भक्ति की लहर लाये हैं, जीवित किया है सृष्टि में, उन सब का मत एक ही है। **एकमताः।**

आखिरी सूत्र में कहते हैं नारद -

य इदम् नारदप्रोक्तं शिवानुशासनं विश्वसिति श्रद्धते,  
स भक्तिमान् भवति, सः प्रेष्ठं लभते सः प्रेष्ठं लभते ॥  
ॐ तत् सत्।

यह शिव का अनुशासन है। यह अभी जो सब बताया है नारद ने, यह सब शिव के तत्त्व से निकला हुआ है। शिव ने ही कहा है -

नारद नहीं बोले। जब कोई भक्त या प्रेमी बोलता है, वह नहीं बोलता, उसके भीतर परमात्मा ही बोलता है। य इदम् नारदप्रोक्तम् जो नारद ने बतलाया यह शिव का अनुशासन है, शिव शासन है। इसमें जो विश्वास रखते हैं, श्रद्धा रखते हैं - स भक्तिमान् भवति - वह ज़रूर भक्तिमान हो जायेंगे, नारद यह वादा करते हैं। जो इसको सुनते हैं, उनके दिल में भक्ति का अंकुर फूटेगा ही, वह सूखा रह ही नहीं सकता। जिन्होंने भी इस वाणी को सुना, उनके दिल में प्रेम का अंकुर फूटता है, जीवन की ज्योति जागती है। सः प्रेष्ठं लभते - वे उत्तम गति को प्राप्त होंगे, दुबारा कहते हैं, वे उत्तम गति को प्राप्त होंगे। वे आगे ही निकलेंगे। उनके जीवन में कोई कमी नहीं रह सकती। ॐ तत् सत्।

जय गुरुदेव

जीवन जीने की कला  
और  
मानवीय मूल्यों का  
अन्तरराष्ट्रीय संस्थान

जीवन का रूपान्तरण

## परम पूज्य श्री श्री रवि शंकर

परमपूज्य श्री श्री रविशंकर जी ने प्रशासनिक तथा सामान्य जन को जीवन के हर क्षेत्र में समान रूप से प्रभावित किया है। गुरुदेव के मार्गदर्शन से लोगों ने जीवन के हर क्षेत्र में सम्पन्नता, स्वास्थ्य और तनाव मुक्त जीवन जीने की शक्ति प्राप्त की है। जीवन जीने की कला के संस्थापक श्री श्री रविशंकर जी का संदेश आज विश्व के एक सौ इक्यावन (151) देशों तक पहुँच चुका है। मानवीय मूल्यों के अन्तरराष्ट्रीय संस्थान का मुख्य केंद्र जेनेवा में है।

इस संस्था के द्वारा गुरुदेव मानव मूल्यों को पुनर्जीवित कर रहे हैं और विश्व शांति का संदेश दे रहे हैं। सेवा के क्षेत्र में भी लोगों को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं। विश्व स्तर पर लोगों के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन ला रहे हैं।

आज जब सारा विश्व युद्ध की विभिन्निका से जूझ रहा है, ऐसे समय में मानव मात्र, समाज, सभ्यता, संस्कृति, धर्म आध्यात्मिक परम्परा और सामान्य मानवीय मूल्यों को गहराई से समझाने के लिए स्वयं गुरुदेव स्नेह भाव से जुटे हुए हैं। परमपूज्य श्री श्री रविशंकर व्यक्ति को आनंदमय, निःस्वार्थ भाव, आत्मिक जागरूकता, आंतरिक शांति, प्रेम तथा सेवा भाव के साथ जीना सिखा रहे हैं। गुरुदेव को सुनने वालों में यूनायटेड नेशन्स के प्रमुख, वर्ल्ड इकोनोमिक फोरम, वैज्ञानिक, संसदीय सदस्य, राजनैतिक तथा व्यावसायिक प्रभुत्व, शैक्षणिक तथा सामाजिक संस्थान तथा अन्य महत्वपूर्ण व्यक्ति शामिल हैं। गुरुदेव को प्रदत्त विविध पुरस्कारों व सम्मान से इस बात की पुष्टि होती है कि गुरुदेव की उपस्थिति ज्ञान व प्रेरणा के लिए कितनी महत्वपूर्ण है।

इतनी उपलब्धियों के उपरान्त आप ऐसे गुरु हैं जिनका स्पर्श अपनत्व से भरा है। उन्होंने इस बात पर बल दिया है कि हम यहाँ किसी आन्दोलन के लिए नहीं अपितु व्यक्ति के विकास के लिए आए हैं। गुरुदेव एक व्यक्ति के हृदय में प्रेम की ज्योति जगाते हैं। यह एक ज्योति अन्य दस हृदयों को ज्योतिर्मय करती है और ये दस अन्य सैंकड़ों को। इस प्रकार गुरुदेव अपने से जुड़े हुए हर व्यक्ति के लिए नेतृत्व और सेवा के अवसर पैदा करते हैं। गुरुदेव की करुणा, आनंद, प्रेम, ज्ञान ने आध्यात्मिकता को एक नया आयाम दिया है।

गुरुदेव का जन्म 13 मई सन् 1956 के दिन तमिलनाडु के पापनाशम ग्राम में हुआ। इन्हें बाल्यावस्था में ही कई बार ध्यानावस्था में पाया गया। चार वर्ष की उम्र में ही गुरुदेव को भगवद् गीता व अन्य शास्त्र कण्ठस्थ थे। किशोरावस्था में ही वो अपने मित्रों से कहने लगे थे कि विश्व भर के लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। सतरह वर्ष की आयु में ही गुरुदेव ने अपना वैदिक अध्ययन तथा आधुनिक विज्ञान में अपनी शिक्षा पूरी कर ली थी। 1982 में परम पूज्य श्री श्री रविशंकर ने सुदर्शन क्रिया सिखाना प्रारंभ किया। सुदर्शन क्रिया साँस लेने की एक सामान्य तकनीक होते हुए भी अत्यंत शक्ति वर्धक है। यह क्रिया तनाव से मुक्ति दिलाती है, व्यक्ति को पूरी तरह से वर्तमान में जीना सिखाती है। जीवन जीने की कला के विभिन्न कार्यक्रमों के अंतर्गत यह क्रिया विश्व भर में सिखाई जाती है। इस क्रिया से दुनिया में करोड़ों लोगों को विभिन्न व्याधियों और तनाव से मुक्ति मिली है।

## जीवन जीने की कला

### विश्व भर में उपलब्ध सेवाएँ

जीवन जीने की कला संस्था 1982 से ले कर आज तक सबसे बड़े स्वयं सेवक संघ पर आधारित है जो बड़े रूप में सामाजिक, सांस्कृतिक, आत्मिक क्रिया कलाओं द्वारा लगभग दो करोड़ लोगों को प्रभावित कर चुकी है। यह एक अव्यावसायिक, शैक्षणिक व मानवीय संस्था है जिसने शांति की स्थापना का संकल्प लिया है, जिसका प्रभाव विश्व भर के ऊँचे पदों पर आसीन लोगों पर पड़ा है और जो मानवीय मूल्यों को विश्व समाज में प्रसारित कर रहे हैं। आज की तारीख में जीवन जीने की कला के सेवा प्रोजेक्ट और शैक्षणिक कार्यक्रमों का अभियान एक सौ इक्यावन देशों में चल रहा है। यह संस्था इकोनोमिक एण्ड सोसियल कांउसिल ऑफ युनायटेड नेशन्स, विभिन्न सभाओं व कार्यक्रमों में हिस्सा ले कर, आपसी मतभेद और स्वास्थ्य से संबंधित समस्याओं के समाधान हेतु विशेष परामर्शदाता के रूप में काम कर रही है।

# जीवन जीने की कला के

## तनाव-मुक्ति कार्यक्रम

### तन, मन और आत्मा का आध्यात्मिक उत्थान

जीवन जीने की कला के कार्यक्रम प्राचीन ज्ञान के सर्वोत्तम स्वरूप और आधुनिक विज्ञान का सुंदर संगम हैं। इन कार्यक्रमों ने बच्चे, बूढ़े, युवा और समाज के हर तबके - ग्रामीण समाज, प्रशासन, व्यावसायिक घरानों आदि सभी समूहों को अपने साथ ले कर चलते हुए आध्यात्मिक जीवन - चर्या एवं व्यक्ति के आत्मोत्थान पर बल दिया है, ये कार्यक्रम व्यक्ति की पूरी उजाशक्ति को विकसित करते हैं। हमारे सारे कार्य कलापों का मील का पत्थर है सुदर्शन क्रिया जो साँस लेने की एक अनूठी उर्जामय क्रिया है।

- ◆ जीवन जीने की कला - कोर्स - पार्ट - 1
- ◆ जीवन जीने की कला - कोर्स - पार्ट - 2
- ◆ सहज समाधी ध्यान
- ◆ दिव्य समाज का निर्माण
- ◆ सर्वांगीण विकास के लिए प्रशिक्षण  
(Art Excel) (आठ से चौदह वर्ष के लिए)
- ◆ युवा सशक्तिकरण सेमीनार (YES)  
(14 से 18 वर्ष के लिए)
- ◆ युवा सशक्तिकरण सेमीनार प्लस (YES+)  
(18 वर्ष या उससे अधिक)
- ◆ जेल संबंधित कार्यक्रम
- ◆ कोरपोरेट एक्जेक्यूटिव प्रोग्राम
- ◆ श्री श्री योग

# मानवीय मूल्यों के लिए

## अन्तरराष्ट्रीय संस्थान

मानवीय मूल्यों के लिए अन्तरराष्ट्रीय संस्थान की स्थापना सन 1997 में जेनेवा में हुई थी, विश्व स्तर पर जो मूल्यों के प्रति एक गहन समझ के साथ व्यक्ति को समाज से जोड़े। इसका दृष्टिकोण है - विविधताओं को बनाए रखते हुए विविध परम्पराओं के उत्सव मनाना (विविधता में एकता) साथ ही आपस में गहरी समझ को स्थापित करना और सैद्धान्तिक मतभेदों को सम्मान देना। इसके लिए आई ए एच वी ऐसे कार्यक्रमों को बढ़ावा दे रहा है जो व्यक्ति में जागरूकता, साहस व प्रतिदिन के जीवन में मानवीय मूल्यों को स्थान देता है। इसकी अवधारणा है कि जीवन के सभी आयामों पे मानवीय मूल्य स्थान पाएँ। विविधता में एकता और शांतिमय व स्थिर संसार का विकास हो। आई ए एच वी मिल कर काम करने वालों को समान लक्ष्य को पाने के लिए एकीकृत करता है जिसके अंतर्गत सरकार, बहुआयामी संस्थाएँ, शैक्षणिक संस्थाएँ, एन जी ओस, कोरपोरेशन्स और व्यक्ति सम्मिलित हैं।

### सेवा योजना

- ◆ ग्राम्य विकास
- ◆ आँगोनिक खेती
- ◆ मानसिक आधात से मुक्ति
- ◆ शांति के प्रयास
- ◆ शिक्षा
- ◆ महिला सशक्तिकरण
- ◆ नशे की लत के शिकार लोगों का रूपान्तरण  
अथवा नशाखोरों का रूपान्तरण